

सितंबर, 2000

सात

आजकल

साहित्य एवं संस्कृति का मासिक



केदारनाथ अग्रवाल
पर विशेष सामग्री

केदारनाथ अग्रवाल की नौ कविताएँ

एक

मौन यौवन
नहीं चुप है
बिना बोले बोलता है
अंतरात्मा
खोलता है !

दो

दिन है
कि इतवार की देह
पातहीन पेड़ हुई है
लगता है कि
सामने खड़ा है कोई एक
भूखा बेहाल कंगाल !

तीन

चेतना का—
जागरण का
जी रहा मैं
सिद्ध जीवन
कर रहा
उपलब्धियां
काव्यार्थ की !

चार

शपथ लेकर भी
शपथ की अवमानना
करते लोग
सत्य के अलंबरदार बने
असत्य का
प्रवचन करते हैं
शान और शौकत से
पापिष्ठ
जीवन
व्यतीत करते हैं !

पांच

मैं
बहुत खामोश हूं
रोशनी ही
रोशनी मैंने किया—
रोशनी के सत्य को
अपना लिया !

छह

चेता
नैया खेता है
अनचेता तो
रेता है !

सात

मलमली संस्पर्श से
आलिप्त करती
हवा चलती
पारदर्शी चेतना से
हमें झलती !

आठ

विचार तो
चिंतन मनन से उद्भूत मात्र
पूर्णतया अरूप
अंग वस्त्रहीन होता है
वही तो
रुचिर रचना का रूप पाकर
अंग वस्त्रधारी होकर
सुंदर सजीव होकर सर्वप्रिय
कविता हो जाता है !

नौ

पांव हैं
पांव
भूतल के पंकज पर्याय हैं पांव
ग्राह्य गंतव्य के
अभिप्राय हैं पांव
चरित्र को चिन्हित करते
ठांव-ठांव है पांव
पांव हैं पांव !



केदार जी ने इसी अप्रैल में 90 वर्ष पूरे किए थे। उन पर दो लेख प्रकाशन की प्रक्रिया में थे। हम चाहते थे कि उनकी कुछ ताजा कविताएं भी प्रकाशित करें। इसी आशय से हमने उनकी कुछ कविताएं आमंत्रित की थीं। इन कविताओं को नरेंद्र पुंडरीक से लिखवाकर केदार जी ने इन पर हस्ताक्षर भी किए थे। ये कविताएं हमें उनके निधन के बाद प्राप्त हुई जिन्हें सावर प्रस्तुत किया जा रहा है। — सं.

लेख

6. कहेँ केदार खरी-खरी

केदारनाथ अग्रवाल जनवादी चेतना के प्रहरी थे। अपनी इस मान्यता से वह रंच मात्र भी इधर-उधर होना नहीं चाहते थे, हुए भी नहीं। उन्होंने अनेक बार दृढ़ स्वर में मार्क्सवाद में अपनी आस्था प्रकट की थी। इसी पृष्ठभूमि में उनको समझा जा सकता है। वह सबसे पहले मनुष्य थे और मनुष्य होने का सबसे बड़ा प्रमाण है संवेदनशील होना। केन के कवि के रूप में प्रसिद्ध केदार जी पर **विष्णु प्रभाकर** का संस्मरण



11. बहुत चुप मैं बह रहा

केदार की कविता की बुनियादी चिंता मनुष्य और जीवन है। चूंकि इस जीवन में पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का हस्तक्षेप भयावह है इसलिए वह कविता में अपना पक्ष चुनते हैं। यह पक्ष साधारण मनुष्य के साथ है। केदार जी के काव्य पर **अरविंद त्रिपाठी**

16. कविता को जीवन से अलग नहीं रखा

केदारनाथ अग्रवाल हिंदी के मूर्धन्य प्रगतिशील कवि थे और हिंदी के प्रगतिवादी आंदोलन से उनका शुरू से संबंध था। समय-समय पर लिखे गए उनके लेखों और टिप्पणियों से आंदोलन की वैचारिक स्थिति का भी पता चल सकता है। केदार जी की वैचारिकता का विवेचन **रामकृष्ण पाण्डेय** द्वारा

28. मैं हूं अब भी प्राणवंत जीवंत

बांदा के किनारे बहने वाली केन नदी ने के.न. (केदारनाथ) को देकर ऐसी काव्यधारा साहित्य में बहा दी जो सदैव के लिए अक्षुण्ण हो गई। केदार जी के काव्य की जनचेतना पर **आनंदस्वरूप श्रीवास्तव**

31. निरंतर जागते कवि का सो जाना

अपनी प्रारंभिक कविताओं में प्रगतिवादाग्रही दीखने वाले केदारनाथ अग्रवाल ने धीरे-धीरे अपने काव्य को वादमुक्त करने में सफलता पाई। केदार जी के काव्य की प्रकृतिप्रियता पर **अशोक प्रियदर्शी**

33. जैसे आग गा रही है फाग

केदार जी की मार्क्सवाद की समझ व्यापक जीवन-संदर्भों के साथ ही मनुष्य की सौंदर्य-चेतना से जुड़ती थी — **आचार्य सारथी**

35. मर्त्य होकर भी...

केदार जी हिंदी प्रगतिशील कविता के अंतिम सबसे गौरवपूर्ण स्तंभ थे — **नरेंद्र पुंडरीक**

38. केन-कूल का कर्मठ कवि

केदार जी को याद कर रहे हैं **राजेश कुमार गुप्त 'गुड्डू'**

40. आज केन बेहद उदास है

केदार जी को श्रद्धांजलि दे रहे हैं **सांवलिया बिहारी शरण**

कहानी

18. नॉमिनी

'अनाम'

42. सेवा या स्वार्थ

शबीना (तमिल)

कविताएं

24. तीन गीत

मधुर शास्त्री

25. तीन कविताएं

दुर्गा प्रसाद गुप्ता

26. तीन कविताएं

अंशु मालवीय

27. तीन गज़लें

मृत्युंजय मिश्र 'करुणेश'

पुस्तक चर्चा

44. व्यक्ति स्थापना का

पयास

राजेंद्र गौतम

स्तंभ

2. पत्र

47. समीक्षा

वर्ष : 57; अंक : 5; पूर्णांक : 671;
सितंबर 2000, भाद्रपद-आश्विन - 1922

संपादक

सुभाष सेतिया

सहायक संपादक

योगेंद्र दत्त शर्मा

उप संपादक

रेमी कुमारी

आवरण : **शेष चंद्र गुप्ता**

आवरण सज्जा : **आशा सक्सेना**

संपादकीय पत्र व्यवहार :

संपादक **आजकल** प्रकाशन विभाग,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001,
दूरभाष : 3387876, फैक्स : 3387876

E-Mail : indiapub@mda.vsnl.net.in

संयुक्त निदेशक (अपान) : **डी.एन. गांधी**

चंदे की दरें :

एक प्रति : 7 रुपये; वार्षिक : 70 रुपये;
दो वर्ष : 135 रुपये; तीन वर्ष : 190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक से) एक वर्ष
पड़ोसी देश : 500 रुपये
शेष विश्व : 700 रुपये
चंदे संबंधी पूछताछ :

प्रकाश चन्द आहूजा

विज्ञापन व प्रसार व्यवस्थापक

पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066 दूरभाष : 6105590

हमारे विक्रय केंद्र

(यहां वार्षिक चंदा जमा कर सकते हैं।)
नई दिल्ली : बुक गैलरी, पटियाला हाउस;

दूरभाष : 3387983

सुपर बाजार कनाट प्लेस,

दूरभाष : 3313308

दिल्ली : बुक शाप, पुराना सचिवालय;

दूरभाष : 3968906

लखनऊ : 27/6, राममोहन राय मार्ग;

दूरभाष : 208004

कलकत्ता : 8, एस्प्लेनेड ईस्ट;

दूरभाष : 2488030

पटना : बिहार राज्य सहकारिता बैंक

बिल्डिंग, अशोक राजपथ;

दूरभाष : 653823

मुंबई : कामर्स हाउस, करीम भाई रोड,

बालार्ड पायर; दूरभाष : 2610081

तिरुअनंतपुरम; गवर्नमेंट प्रेस के निकट;

दूरभाष : 330650

हैदराबाद : राज्य पुरातत्व संग्रहालय बिल्डिंग,

पब्लिक गार्डन; दूरभाष : 236393

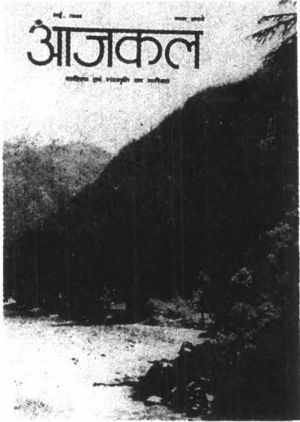
चेन्नई : राजाजी भवन, बेसेंट नगर; दूरभाष

: 4917673

बंगलौर : एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला

दूरभाष : 5537244

टाइपसेट: **ज्योति लेजर टाइप सेंटर**



सार्थक अंक

● मई प्रंक का चिंतन स्तंभ जिस स्तर का सौंपा गया है निश्चय ही वह स्वस्थ मनोभूमि द्वारा निषेचित, सारगर्भित अवधारणा की अभिव्यक्ति कही जाएगी। संप्रति साहित्य जगत जिस तलखी को महसूस कर रहा है उसे ही नरसिंह श्रीवास्तव ने सार्थक ढंग से संजोया है।

वस्तु-विनिमय हेतु वस्तु एवं अर्थ (मूल्य) के प्रति तटस्थता बरती जाती है, उसी प्रकार आज विश्व बाजार में संस्कृति-विनिमय हेतु तटस्थता बरतते हुए संक्रमित सभ्यता का आधान किया जा रहा है। साहित्य जगत में ऐसी व्यापारवृत्ति, अर्थ हेतु मानवीय मूल्यों को गौणता प्रदान करने लगी है। चूंकि साहित्य की जिजीविषा उन्हीं मानवीय मूल्यों को प्रमुख मान पाती है, इसीलिए आज के सचेष्ट साहित्यजीवियों के समक्ष

भीषण द्वंद्व मुंह बाए खड़ा है। सबसे बड़ी नियति (विडंबना) यह है कि अस्तित्व की दृष्टि से यह बोध वर्तमान रहते हुए भी व्यावहारिक दृष्टि से अस्तित्व विहीन दिखने लगा है। सबसे अहम प्रश्न यह है कि आज की उपभोक्तावादी अथवा अर्थवादी अपसंस्कृति बेहया-सी बढ़ती जा रही है, जिसका हरापन देख लोग गड्ढे में गिरते जा रहे हैं।

अमिताभ जी ने बड़ा ही सार्थक प्रश्न उठाया है। आए दिन मानवीय मूल्य हने जा रहे हैं, फिर भी कविताएं अबाध गति से लिखी जा रही हैं। सचमुच श्रीवास्तव जी ने चिंतन स्तंभ में ठीक ही दर्शाया है कि साहित्यिक जिजीविषा एवं तज्जनित स्वस्थ लालसाओं को अपनाए जाने के कारण साहित्यकार विषम द्वंद्व से जूझा करते हैं। ऐसे में रचनाधर्मिता के माध्यम से रचनाकार अपने निजी मूल्यों को संजोते हुए सुरक्षित रख पाने का सार्थक प्रयास करता है। उसकी अदम्य पिपासा ऐसे पनपती जाती है कि वह उन रचनाओं को अधिकाधिक लोगों के समक्ष रखने के लिए व्याकुल रहता है। यह अलग बात है कि उसकी अपनी पहुंच अथवा अर्थवादी समाज की समझ अलग-अलग ढंग की होती है। खेद की बात तो तब और सालने लग जाती है जब रचनाकारों, साहित्य सेवियों

द्वारा मिथकीय विडंबनाएं अपनाई जाने लगती हैं। यहीं पर प्रबलतर विरोध साहित्य को बहुत बड़ी हानि पहुंचाता है। इस दिशा में चिंतन सरीखा सार्थक स्तंभ अनिवार्य जान पड़ता है।

कुछ ऐसा ही संयोजन ललित निबंध के माध्यम से चंद्रदेव जी ने दिया है। पतझड़ के प्रतीक से संतुलित जीवन-दर्शन के अनिवार्य आयामों को इंगित किया है। सचमुच सरस उद्देश्य से झड़ने वाले पतझड़ में निसर्ग सुंदरी नैसर्गिक साधना को साधा करती है। निर्वस्त्र योगी-सा पतझड़ निज की सत्व-साधना से जागतिक वसंत का तन ढकता है।

अनिल चंद्र ठाकुर ने औपनिवेशिक अभिजात की मानसिकता के संक्रमण को झेलने की विवशता को बोधाय है। सचमुच कवि जिस व्यापक बोध की मंशा से काव्य-विधा को अपनाता है उसे समाज तो क्या अपने भी संपूर्ण दृष्टि से देख नहीं पाते हैं। कहानी मार्मिक लगी।

दिनेश सिंह एवं मनोज शर्मा की कविताएं अच्छी लगीं। उर्मिला जैन सहित अन्य रचनाकारों की रचनाएं सामयिक एवं समीचीन लगीं।

—विलीन गहमरी, गाजीपुर

चिंतनपरक लेख

● 'संस्कृति, सभ्यता और साहित्य' के अंतर्संबंधों पर श्रीवास्तव जी का चिंतनपरक आलेख पढ़ा। उन्होंने जिस प्रकार उक्त संबंधों पर प्रश्नों की बौछार कर पुनः उसे समझाने का प्रयास किया है, वह तो प्रशंसनीय है ही, पर मैं उपर्युक्त आलेख को पढ़ने के बाद स्वयं अपने विचारों में उलझकर रह गया।

यादव जी का ललित निबंध 'पतझड़' भारतीय जनमानस के विचारों और व्यवहारों का यथार्थ दर्शन बहुत ही करीब से करवाती है। साथ ही विश्व परिवेश की उन कटु सच्चाइयों का बोध करवाती है जो सवेग ही फैली पड़ी हैं। 'हार गए पापा' कहानी नारी स्वभाव को व्यक्त करती है। कहानी एक साथ ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों का तुलनात्मक अध्ययन करवाती है। कमलेश्वर जी की भेंटवार्ता अच्छी रही। मनोज शर्मा की कविता 'हमी साध रहे हैं सत्य' और शाहीन जी की गूजलें अच्छी लगीं।

—जीतेंद्र राम, दरभंगा

साहित्य का दायित्व

● चिंतन स्तंभ के अंतर्गत 'संस्कृति, सभ्यता और साहित्य' पढ़ने के बाद सोचने लगी उन तमाम स्तरीय पत्रिकाओं के बारे में जो कहानी के नाम पर आखिर किस सभ्यता; संस्कृति

और साहित्य की अभिव्यक्ति कर रहे हैं? इतर संबंध से लेकर देह-संस्कृति का पूरा उफान बनी रहती है। फिर प्रस्तुत गंभीर चिंतन के माध्यम से साहित्य का एक प्रमुख कार्य यह भी होता है कि वह संस्कृति और सभ्यता के बीच एक पुल बनकर विभिन्न वर्गों में बंटे जनमानस को समरस एवं सुरुचिपूर्ण रखने की अपेक्षा कहां से कर रहे हैं? क्या ये सब

हमारे साहित्यकार या संपादक नहीं रख सकते? क्यों छूट जाती है वह संस्कृतिमूलक रचनात्मक स्थिति। क्या समाज की विकृत मनोदेशा को शब्दों के माध्यम से नंगा करके ही अपने लेखन दायित्व से मुक्ति पाई जा सकती है। मानती हूं, भौतिकवादी एवं उपभोक्तावादी मानसिकता की अपनी जुंबिश है। क्या साहित्य का दायित्व महज इन स्थितियों से

लड़ना होता है ?

-उत्तिमा केशरी, पूर्णियां

ज्ञानवर्द्धक अंक

● चिंतन-आलेख 'संस्कृति, सभ्यता और साहित्य' काफी ज्ञानवर्द्धक है। यदि किसी जाति विशेष की संस्कृति व जीवन को समझने और जीने की उसकी समग्र दृष्टि है तो क्या उसकी साहित्य की अपनी अलग

संस्कृति है और अन्य कलाओं की अपनी अलग-अलग संस्कृतियां हैं? इसी से जुड़ा दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या सांस्कृतिक पराभव के युग में स्तरीय साहित्य का भी पराभव निश्चित है। हिंदी साहित्य जगत में यह पराभव सृजन के स्तर पर न होकर उसकी लोकप्रियता के हास के रूप में हुआ है और हो रहा है। ऐसा

आजकल का अब आप 2 व 3 वर्ष का चंदा भी एक साथ जमा कर सकते हैं

मैं आपकी पत्रिका *----- का ☐ एक वर्ष (रु. 70)

☐ दो वर्ष (रु. 135) ☐ तीन वर्ष (रु. 190) का ग्राहक बनना चाहता हूं।**

चंदे का रु. ----- डी.डी./भारतीय पोस्टल आर्डर/

मनिआर्डर सं-----दिनांक-----संलग्न हैं

हस्ताक्षर -----

नाम :-----

पता :-----

fl u % ☐☐☐☐☐☐

* पत्रिका का नाम

** कृपया जितने वर्ष का चंदा जमा करना चाहें उस पर निशान लगा दें + और यह फार्म भरकर : विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, ईस्ट ब्लॉक 4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 के नाम भेजें। टेलीफोन : (011) 6105590

● दिल्ली से प्रकाशित हमारी अन्य पत्रिकाएं ७६:नाल भारती, आजकल (उर्दू), कुरुक्षेत्र (हिंदी व अंग्रेजी), योजना (हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी व उड़िया)। पत्रिकाओं की चंदे की दरें:

एक वर्ष : रु. 70.00, दो वर्ष : रु. 135.00, तीन वर्ष : रु. 190.00

● कृपया अपना चंदा डी.डी./पोस्टल आर्डर/मनिआर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग, के नाम बनाएं।

● पत्रिका भेजने में, चंदा प्राप्त होने के बाद, आठ से दस सप्ताह का समय लगता है कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें।

● किसी भी जानकारी के लिए लिखें: विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लॉक 4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है।

अनिल चंद्र ठाकुर की कहानी 'हार गए पापा' कवि की त्रासदी लगी। कथा हड़बड़ी में लिखी गई है। दिनेश सिंह की कविताएं अच्छी हैं।

—कलाधर, पूर्णियां

मौलिकता

● नरसिंह श्रीवास्तव का 'संस्कृति, सभ्यता और साहित्य' शीर्षक चिंतन लेख पढ़ा। मुझे लगता है, संस्कृति सैद्धांतिक पक्ष है और सभ्यता व्यावहारिक, और साहित्य इन दोनों में निहित जीवंतता को अमरत्व प्रदान करने वाला मानवीय चिंतनात्मक प्रयास है। रामविलास शर्मा जी की 'परंपरा का मूल्यांकन' का संदर्भ लेख को बल प्रदान करता है।

चंद्रदेव यादव के ललित निबंध 'पतझड़' में प्रकृति के पूंजीवाद से शोषित पतझड़ व भारत की विशेष रेखा का साम्य एवं कुंडलिनी जागरण की अपेक्षा पतझड़ से प्रेरणा लेने की सीख में वाकई लेखक की मौलिकता झलकती है। उर्मिला जैन के विश्वकोश के लेख को कथादेश के मई अंक में महेंद्रराजा जैन के लेख के साथ पढ़कर भाव बनता है।

'हार गए पापा' में एक मध्यवर्गीय पारिवारिक नारी की

समय के साथ चलने की महत्वकांक्षा के तिरिया हठ के कारण नैतिक पुरुष की विवशता के यथार्थ को दिखाया है। 'यह शहर' में गगनचुंबी सीमेंट, कंकीट के जंगलों के परिणामस्वरूप उत्पन्न एक अलग प्रकार की दासता एवम् अपसंस्कृति से निर्मित असंवेदना को दर्शाया है।

—अरुण पाराशर 'बारना', कुरुक्षेत्र

एक से बढ़कर एक

● इस अंक की सभी रचनाएं एक से बढ़कर एक हैं। 'संस्कृति, सभ्यता और साहित्य' में 'सभ्यता की रचनात्मक शक्ति, संस्कृति की समग्रता और साहित्य की भावात्मक चेतना का विचार-विश्लेषण सत्य की खोज जैसा है, जो प्रबुद्ध पाठकों को समाज-सुधार की प्रेरणा देता है।

'पतझड़' एक ललित निबंध है, जिसमें लेखक ने प्राकृतिक परिवर्तनों के माध्यम से पतझड़ द्वारा जीवन और मानवीय विशिष्टियों की अभिनव प्रस्तुति की गई है। 'हार गए पापा' और 'यह शहर' कहानी रोचक, प्रेरक और शिक्षाप्रद हैं। 'विश्वकोश' शीर्षक आलेख में तो लेखिका ने बड़े ही प्रभावपूर्ण शोध के साथ विश्वकोश और शब्दकोष की विस्तृत और ज्ञानवर्धक जानकारी प्रस्तुत की है।

—वीरेंद्र शर्मा 'कौशिक', मऊ

अनूठा योगदान

● उर्मिला जैन पाठकों को विश्वकोश के माध्यम से शब्दकोश के प्रकार, दोनों के अंतर बताना चाह रही हैं या ब्रिटानिका एनसायकिलोपीडिया का परिचय? लेखों का चयन भली प्रकार करें। अनिल चंद्र ठाकुर की 'हार गए पापा' तथा तरन्नुम रियाज की 'यह शहर' कथा-साहित्य में अनूठा योगदान है। उनकी शैली तथा शिल्प का दूसरा नहीं। पुस्तक-चर्चा में प्रकाशकों के पूरे ठिकाने छापा करें।

—योगेंद्र प्रसाद 'आजाद', जमालपुर

खटकता है

● जीवन की तेज रफ्तार में विश्वकोश संदर्भ ग्रंथ की भूमिका ही मुख्य रूप से निभाएंगे। एक खंड का विश्वकोश, विश्वकोश का अंश मात्र ही है, तथा जिस तरह शाखा को वृक्ष नहीं कहा जा सकता उसी तरह विषय विशेष से संबंधित कोशों को विश्वकोश नहीं कहा जा सकता। उल्लिखित सामग्री में किसी अच्छे हिंदी कोश का उल्लेख नहीं किया गया है जो खटकता है। ब्रिटानिका का कुछ अधिक ही गुणगान किया गया है। ब्रिटानिका के निर्माण में जितना सहयोग मिला है क्या उतना भारत में किसी विश्वकोश के निर्माण में मिला है? भारतीय

प्रकाशक पाठकों की कमी का रोना रोते हैं लेकिन अपनी ठग प्रवृत्ति को नहीं त्यागना चाहते, इसमें कोशकार भी सहभागी हैं।

भारतीय फिल्मों विश्व में वो प्रतिष्ठित स्थान नहीं प्राप्त कर पाई हैं जो प्राप्त करना चाहिए, तभी तो एक भी ऑस्कर पुरस्कार आज तक कोई भी भारतीय फिल्म नहीं जीत पाई। सच तो यह है कि कला फिल्मों का निर्माण पुरस्कार पाने हेतु तथा व्यावसायिक फिल्मों का निर्माण पैसा कमाने हेतु होता है।

—सतीश कुमार राय, शेरपुर,
गाजीपुर (उ.प्र.)

शोधात्मक लेख

● उर्मिला जैन ने जो 'विश्वकोश' और 'शब्दकोश' के बारे में भ्रम दूर किया है, काफी शोधात्मक और परिष्कृत लेख रहा है। इन कोशों के अंतर्गत दी जाने वाली जानकारी भी ज्ञानवर्द्धक रही। समय-समय पर ऐसी ज्ञानपरक सामग्री से पत्रिका के प्रति उन्माद बना रहता है। साथ ही तरन्नुम रियाज की 'यह शहर' कहानी अंतर्मन को भेद गई। बिलखते बच्चों की मां की पुकार से सहज ही अश्रुधारा बह निकली। 'पतझड़' को व्यंग्यात्मक लहजे में लिखा गया है। ऐसा लगता है, मानो वह 'पतझड़ पर्व' है, जिसको सामाजिक और

राजनैतिक रूप से मनाना अनिवार्य
le>kt kA

—मनोज कुमार सक्सेना,
ललितपुर (उ.प्र.)

मूल्यों का क्षरण

● चंद्रदेव जी ने अपने ललित निबंध 'पतझड़' के बहाने पूरे समाज के तौर-तरीकों पर चर्चा की। यथार्थ पर मीठी कुल्हाड़ी चलाई। नरसिंह श्रीवास्तव ने अपने लेख में संस्कृति; सभ्यता और साहित्य के रिश्तों की गहन जांच पड़ताल की। 'साक्षात्कार' के अंतर्गत कमलेश्वर ने फिल्म और साहित्य के दृष्टिकोण की खाइयों को उजागर किया। दरअसल फिल्म और साहित्य में वही अंतर है जो तात्कालिकता और स्थायित्व में है। अनिल चंद्र ठाकुर अपनी कहानी में जहां संयुक्त परिवार के अंतर्विरोधों को सामने लाए वहीं साहित्यकार के समाज से द्वंद्व और गांव तथा शहर के नजरियों में फर्क को भी उजागर किया। 'यह शहर' कहानी खामोशी से खत्म हुई और काफी कुछ पाठकों पर छोड़ गई।

दीवान सिंह बजेली और युद्धवीर सिंह की फिल्म सामग्री अच्छी थीं।

कुछ कविताएं भी उत्कृष्ट हैं।

—दिनेश कुमार राय, इलाहाबाद

विशिष्ट उपलब्धि

● इस अंक की विशिष्ट उपलब्धि रही अनिल चंद्र ठाकुर की 'हार गए पापा' और तरन्तुम रियाज की 'यह शहर'। कहानियां दिल को छू जाने वाली थीं। दोनों कहानियां एक-दूसरे की पूरक हैं। चंद्रदेव यादव का ललित निबंध 'पतझड़' अच्छा लगा। दीवान सिंह बजेली द्वारा शबाना आजमी की अभिनय-यात्रा का परिचय अच्छा लगा। कमलेश्वर से बातचीत रोचक लगी। उर्मिला जैन द्वारा लिखित आलेख 'विश्वकोश' अत्यंत ज्ञानवर्द्धक लगा। कविता खंड में शाहीन को छोड़कर सभी अति सामान्य लगे। शाहीन की तीनों गज़लें अत्यंत प्रिय लगीं।

—विद्याशंकर, वाराणसी

गाम्भ्य संस्कृति

● बहुत दिनों के बाद एक अच्छी कहानी पढ़ी। अनिलचंद्र ठाकुर की कहानी 'हार गए पापा' कहानी जो वस्तुतः एक किस्सा है। इस कहानी ने मुझे और मेरे मित्र श्रोताओं को उस विलुप्त स्वाद का मजा दिया, जो हम छुटपन में जाड़े की सांझों में या फिर गर्मी की रातों में 'खिस्से' से प्राप्त करते थे। हम इसे किस्सा नहीं, खिस्सा कहते थे।

कहानी में सामाजिक, पारिवारिक, वैचारिक और

भावनात्मक द्वंद्व के मानसिक दंश से हर सांस जूझते पापा के बहाने जीवन का एक युग पराजित होता है... पारिवारिक संबंधों का स्वाभाविक सरोकार पराजित होता है... जीने की सामूहिकता पराजित होती है... जड़ों की सार्थकता पराजित होती है... मतलब के बरक्स प्यार पराजित होता है... अपनों से आप पराश्रित होता है... लोक, कला समग्रता, जीवनगत आयामों की पहचान के सकल अर्थ पराजित होते हैं।

—शंकर प्रलामी, दरभंगा

रोचक अंक

● दीवान सिंह बजेली, युद्धवीर सिंह तथा उमेश चतुर्वेदी के फिल्मों से संबंधित प्रयास पर आश्चर्य मिश्रित सुख पहुंचा। कारण कि आजकल ज्यादा साहित्य-संस्कृति पर प्रकाश डालता है। दीवान सिंह की शबाना आजमी के अभिनय यात्रा पर केंद्रित समीक्षा रोचक लगी, लेकिन इसका उद्देश्य ज्यादा साध्य तब होता जब इस अभिनय यात्रा में दादा साहेब फाल्के, व्ही. शांताराम, एम. जी. रामचंद्रन, देविका रानी, अशोक कुमार, राजकपूर, मीना कुमारी, बलराज साहनी तथा संजीव कुमार पर किस्तवार प्रकाश डाला जाता। लाजवाब अदाकारी की मलिका शबाना जी के अभिनय में पिता कैफी आज़मी का भी संस्कार

साफ दृष्टिगत है। कमलेश्वर से भेंटवार्ता में फिल्मी कथाकार का पक्ष ज्यादा प्रबल दिखा है। साहित्यिक पक्ष दब-सा गया है।

मनोज शर्मा, अवध तिवारी तथा शांति राकेश की कविताओं में कल्पनात्मक बिंब का अभाव दिखता है। मेरी समझ से 'निराला' के नाम पर आरंभ अतुकांत कविता का अकविता तक पहुंचना, उनके लयात्मकता को लहुलुहान करता है। साथ ही यह हिंदी कविता को सर्वप्रियता से विमुख करने में सहायक है।

अतः आजकल तथा साहित्यकारों को इन बढ़ते कविताप्रियता के प्रति सजग होने की आवश्यकता है।

—राजू श्रीवास्तव, सारण

स्वस्थ परंपरा

● बहुत दिनों के बाद आजकल का आवरण पृष्ठ आकर्षक के साथ अर्थपूर्ण लगा। वैसे अंक की उपलब्धि के रूप में अनिल चंद्र ठाकुर की कहानी रही। हमारे जीवन में गांव एवं शहर का द्वंद्व किस तरह व्यक्ति के विकास पर आरोपित हो रहा है, इसका बहुत ही यथार्थ वर्णन कहानी में मिला। कहानीकार अपनी बात कहने में जहां सक्षम हैं वहीं कहानी की भाषा भी उसकी आभा बढ़ा रही है।

—मनोज कुमार 'मनु', इलाहाबाद

कहें केदार खरी-खरी

केदारनाथ अग्रवाल जनवादी चेतना के प्रहरी थे। अपनी इस मान्यता से वह रंच मात्र भी इधर-उधर होना नहीं चाहते थे, हुए भी नहीं। उन्होंने अनेक बार दृढ़ स्वर में मार्क्सवाद में अपनी आस्था प्रकट की थी। इसी पृष्ठभूमि में उनको समझा जा सकता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मार्क्सवाद में इतनी कटु आस्था रखने के कारण, वह सौंदर्य और हृदय पक्ष में विश्वास नहीं रखते थे। वह सबसे पहले मनुष्य थे और मनुष्य होने का सबसे बड़ा प्रमाण है संवेदनशील होना। केदारजी पर लिरवा विष्णु प्रभाकर का यह संस्मरण उनके निधन से पूर्व ही प्रकाशन की प्रक्रिया में था। इसे अब प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रगतिशील विचारधारा के मूर्धन्य कवियों में केदारनाथ अग्रवाल का विशिष्ट स्थान है। विशिष्ट इसलिए कि वह अपने विश्वास को जीना जानते हैं।

मार्क्सवाद के प्रति उनकी आस्था अडिग है। उन्हीं के शब्दों में- 'मुझे द्वंद्ववादी भौतिकवाद का जीवन-दर्शन ही सर्वोत्तम मानवीय बोध का दर्शन लगा। मेरी समस्त भ्रांत धारणाएं समाप्त हो गईं- प्राचीन समस्त जीवन-दर्शन सिद्धांत अर्थहीन लगे। यही कारण है कि मैं न तो किसी परमेश्वर या ईश्वर में विश्वास करता हूं न ही देव या दानव को मानता हूं। मनुष्य है, उसकी चेतना ही सृष्टि है। दूसरी एक सृष्टि प्रकृति है, वह चेतन नहीं है। मनुष्य ने श्रम करते-करते चेतना अर्जित की और अपने से स्वयं को, देश को, विश्व को, मानवीय संबंधों को बनाने का द्वंद्व और संघर्ष करने लगा। यही सत्य है, चिर सत्य है।'।

('जीवनवृत्त' से)

इस बात को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने अजय तिवारी, अशोक त्रिपाठी और विनयशील से बातचीत करते हुए कहा था- 'यह ध्रुव सत्य है कि मार्क्सवादी हुए बिना आप आदमी नहीं हो सकते और आदमी नहीं हो सकते तो अच्छी कविता नहीं लिख सकते। और आदमी होने के लिए यह

जरूरी है कि यह जीवन-दर्शन आप समझिए और जीवन को समझिए और कागिशन की थ्योरी को समझिए।'।

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 100)

इसी संबंध में उन्होंने अपने लेख 'सही बयानी और संबद्धता' में लेनिन के कथन को उद्धृत किया था- 'संज्ञान के द्वारा ही आदमी अपने विचार को वस्तु का नैकट्य प्रदान करता है। यह काम वह शताब्दियों से करता चला आ रहा है। इस काम का कोई अंत नहीं है इसलिए आदमी के विचार को जीवनहीनता से नहीं, अमूर्तन से नहीं, न गतिहीनता से, न अंतर्विरोधहीनता से, बल्कि गति की शाश्वत प्रक्रिया में अंतर्विरोधों के प्रगटीकरण और उनके समाधान में समझना चाहिए।' लेनिन का यह कथन इतिहास सम्मत है। मानव-जीवन की समग्रता को समाए हुए है। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक क्रिया-कलापों से घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। वस्तुपरकता और आत्मपरकता की द्वंद्ववादीकता से निरूपित है। सभ्यता और संस्कृति की सूक्ष्म और जटिल भंगिमाओं से आपूरित है। लेनिन के ये वाक्य मानव जीवन को सही वैज्ञानिक और समाजवादी दृष्टि और दिशा देते हैं।'।

(विचारबोध : केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 135)



केन के कवि केदारनाथ अग्रवाल

इसके बाद उन्हें समझने के लिए और कुछ नहीं रह जाता। वह जनवादी चेतना के प्रहरी थे। अपनी इस मान्यता से वह रंच मात्र भी इधर-उधर होना नहीं चाहते थे, हुए भी नहीं।

मैं यहां स्वीकार करूंगा कि उनको समझने के लिए जितनी सघनता की जरूरत है उतनी सघनता मेरे और उनके बीच में नहीं रही। मैं उनसे जीवन में केवल तीन बार मिला हूं। एक बार मद्रास में, जब वह अपने पुत्र के पास रहे थे। दो बार दिल्ली में— एक बार डा. रामविलास शर्मा के छोटे भाई रामशरण शर्मा मुंशी के घर पर, दूसरी बार तब जब वह 'साहित्य अकादमी' का पुरस्कार लेने आए थे। 'साहित्य अकादमी' में भाषण देते हुए उन्होंने दृढ़ स्वर में मार्क्सवाद में अपनी आस्था प्रकट की थी। इसी पृष्ठभूमि में उनको समझा जा सकता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मार्क्सवाद में इतनी कट्टर आस्था रखने के कारण, वह सौंदर्य और हृदय पक्ष में विश्वास नहीं रखते।

वह सबसे पहले मनुष्य थे और मनुष्य होने का सबसे बड़ा प्रमाण है संवेदनशील होना। मेरे पास उनके दस पत्र होंगे। उनमें बहुत साधारण बातों की चर्चा है। मैंने उनको अपनी पुस्तकें भेजी थीं। तब तक वह काफी कमजोर हो गए थे और दृष्टि भी क्षीण हो गई थी। इसलिए वह स्वयं मेरा उपन्यास तुरंत नहीं पढ़ सके। उसे उन्होंने अपने मित्र आर.पी. राय को पढ़ने के लिए दिया और उनकी प्रतिक्रिया मुझे भेजी।

वह आयु में मुझसे एक वर्ष बड़े थे लेकिन उनकी विनम्रता देखिए कि मैंने जब इस बात की ओर संकेत किया तो उन्होंने उत्तर दिया— 'आप मुझसे बहुत बड़े हैं अपने कृतित्व के कारण *आवारा मसीहा* लिखकर आपने यह सिद्ध कर दिया कि आप कुशल चिंतक और कृतिकार हैं और जीवन को उसके परिप्रेक्ष्य में सही तौर पर पकड़ते हैं।' मैं मार्क्सवादी नहीं हूं, इसलिए मेरे प्रति उनके ये उद्गार बहुत महत्वपूर्ण हैं।

थोड़ा पीछे लौटें। उनका जन्म पहली अप्रैल, सन 1911 को बांदा जिले के कमसिन ग्राम के एक जमींदार परिवार में हुआ था। वहां से बांदा आकर वकालत करने तक उन्होंने जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव देखे। वह जिला अदालत में गवर्नमेंट काउंसिल भी रहे और वहीं से अवकाश प्राप्त करने के बाद निजी वकालत करते रहे।

शुरू से ही उनका संबंध मार्क्सवादी विचारधारा से ही रहा और उन्होंने जो देखा, जो अनुभव किया, वही लिखा। 'कहें कंदार खरी-खरी' * इस लेख का शीर्षक हमने ऐसे ही नहीं रखा है। उन्होंने अपने विचारों को प्रकट करने में कभी दुविधा अनुभव नहीं की। सहज, सरल भाषा में उन्होंने अपने मन की भावना को शब्द दिए। उनके मन की भावना जनता के मन की थी। 16 सितंबर, 1946 को उन्होंने यह कविता लिखी:

आज भी आई / कल भी आई / रेल बराबर सब दिन आई
लेकिन दिल्ली से आजादी / अब तक अब तक हाथ न आई।

लेकिन जब आजादी आ गई तो उन्होंने उसकी वास्तविकता को प्रकट करते हुए 26 अप्रैल, 1954 को ये पंक्तियां लिखीं :

* कंदारनाथ अग्रवाल के काव्य-संग्रह का नाम

पंचवर्षी योजना की रीढ़ ऋण की मूंखला है
पेट भारतवर्ष का है और चाकू डालरी है
संधियां व्यापार की अपमान की कटु ग्रंथियां हैं
हाथ युग के सारथी हैं भाग्य रेखा चाकरी है।

इसी तरह की कविताएं हैं इस संकलन में। एक अगस्त, सन 1976 को आजादी की वास्तविकता को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है:

सत्ताइस साल में तुम / न रह गए तुम / न हम रह गए हम /
तुम हो गए खूंखार / हम हो गए बीमार / अभावग्रस्त लाचार।

और युग के कर्णधारों की वास्तविकता को स्पष्ट करते हुए 'ये साधक' कविता में उन्होंने सन् 1976 में लिखा :

ठाट-बाट की सुविधा भोगी / ये साधक आराधक धन के
निहित स्वार्थ में लीन निरंतर / बने हुए हैं बाधक जन के
केंद्रबिंदु पर बैठे ठहरे / चक्र चलाते हैं शोषण के।

अपनी कविताओं की प्रेरणा का श्रेय वह सबसे अधिक रामविलास शर्मा को देते हैं। इस संबंध में उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। एक बार एक कवि सम्मेलन का रोचक संस्मरण सुना रहे थे रामविलास जी को तब उन्होंने कहा कि अच्छा एक कविता सुनाओ। उन्हीं के शब्दों में :

तब हमने एक कविता सुनाई—

फूलों की बौछार से / रंग बिरंगे प्यार से
हार गया करतार कलाकार, अपने ही दरबार में
अपना मुकुट उतार के, मुक्त हुआ भव भार से।

'उनको याद हो गई। दूसरे दिन जब उनके दोस्त चतुर्वेदी आए तो उन्होंने उसको दोहराया। और हम यहां आए तो लगे हमको कहने कि यार, ये कविता कुछ सीधी-साधी बहुत है, इसमें कुछ होना चाहिए और। तो हमने एकाध लाइन में जोड़ा-जाड़ा कुछ, जरा और अलंकृत किया फिर हमने लिखकर भेजा कि यार ये कविता इस तरह की है, तुम्हारी क्या राय है? उन्होंने लिखा कि भाई मुझे पहली वाली अच्छी लगती है, ये नहीं अच्छी लगती; वैसे तुम जानो। तो मैंने पढ़ा, मैंने कहा, ठीक लिखा तुमने।'

(कवि मित्रों से दूर, अजय तिवारी, इन्बार रब्बी, पृष्ठ 32)

अपनी रचना प्रक्रिया की चर्चा करते हुए अजय तिवारी के इस प्रश्न के उत्तर में कि 'कविता आप मूलतः देखकर लिखते हैं, उसमें चुनाव अपने-आप हो जाता है।' वह कहते हैं कि "ज्यादातर यही होता है। यदि उसका इंपैक्ट हमारे ऊपर होता है तो हमको सहज लिखने में कोई दिक्कत नहीं होती। और अच्छी कविता में ज्यादातर यही हुआ है। इस तरह की कविताएं अपने आप आती हैं। इनको हम गुनते नहीं।"

(उपरिबत, पृष्ठ 121)

उनको पहाड़ से ज्यादा समुद्र प्यारा लगता था: 'पानी का यह हिलता हुआ यह प्रकंपित दृश्य मुझे ज्यादा अच्छा लगता है, न जाने क्यों समुद्र को देखकर कल्पना करता हूं कि अगर कहीं यह चेतन होता तो इतनी बड़ी शक्ति इसमें है क्या गजब होता और मैं देखता हूं तो बार-बार मेरी यह हालत होती है वह आ रहा है इतनी जोर से 'फ्यूरियसली' यों आया और किनारे पर

बिल्कुल धीरे से मुर्दा ऐसे आता है। एक कविता भी मैंने 'लवर्स बीच' पर लिखी थी। मुझे लगता है रह-रहकर कि यह इतना शक्तिशाली है और कैसा निर्बल हो जाता है। यह भावना मेरे मन में बार-बार उभरती है।

(उपरिवत, पृष्ठ 122)

इस तरह अपने कवि मित्रों से बातचीत करते हुए उन्होंने अपनी रचना प्रक्रिया और अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट किया है। प्रकृति को लेकर उन्होंने काफी कुछ लिखा है, और सौंदर्य की चर्चा करते हुए वह अपने लेख 'प्रगतिशील साहित्यकारों से' में वह कहते हैं :

'साहित्य में सौंदर्य की अभिव्यक्ति अब तो उपलब्ध ही नहीं होती। राजनीति और अहंभाव, बुद्धिभाव से लैस होकर साहित्य से सौंदर्य को निकाल ही दिया है। साहित्य में सौंदर्य जैसा कोई तत्व ही नहीं रह गया है। यह कहना कि सौंदर्य कलाबाजी है, उसका जीवन से कोई संबंध आज के युग में नहीं है— यह बेहद गलत है। सौंदर्य न हो तो मानवीय गुणों को देखने की क्षमता ही नष्ट हो जाएगी। सौंदर्य कोई बाहरी अजूबा तत्व नहीं है। प्रकृति व जीवन से उद्भूत हुआ करता है सौंदर्य! श्रम से सौंदर्य का स्वरूप उजागर होता है— सौंदर्य से मनुष्य की चेतना का सृजनात्मक परिवर्तन होता है और वह किसी एक की न होकर सबकी अपनी चेतना बन जाती है। सौंदर्यचेता साहित्यकार मानवीय चेतना को देश और काल के असंख्य रूपों में समृद्ध करता है और तभी तो भावों और विचारों को स्थायी स्थायित्व प्राप्त होता है।'

(विचारबोध, पृष्ठ 122)

मार्क्सवाद के प्रति संपूर्ण निष्ठा रखने वाले कवि के ये विचार उसकी अंतर्दृष्टि को स्पष्ट करते हैं। यह सब हमने इसलिए लिखा है कि खरी-खरी कहने वाले मार्क्सवादी को गलत न समझ लिया जाए। मार्क्सवादी होते हुए भी वह अपने को 'इमोशनल' कहते थे। वह स्वीकार करते थे कि प्रकृति पर जो उन्होंने कविताएं लिखी हैं उनमें प्रेम का भाव या नारी सौंदर्य एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़ गए हैं। एक प्रश्न के उत्तर में कि 'उन्होंने पुरुष के सौंदर्य का वर्णन क्यों नहीं किया — वह कहते हैं कि 'पुरुष जितने भी मिले-चाहे वे यहां के हों या गांव के हों या कचहरी के वकील या विद्वान हों— मुझे कुछ जंचे नहीं। तो सही बात तो यह है कि नैतिकता का मेरा जो धरातल या छल कपट आदि से दूर रहने का, यह भी नहीं मिला।'

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 43)

इस पर उन्हें याद दिलाया गया कि निराला जी उन्हें बहुत प्रिय थे, उन्होंने उत्तर दिया— 'वह मुझे इसलिए प्रिय थे कि जो उनका वैरागी रूप है, पैसा-वैसा कुछ नहीं कमाया-धमाया, एक निश्छल काव्य-प्रेम, यह मुझे बहुत प्रभावित करता है।' रामविलास जी की याद दिलाने पर उन्होंने बड़े जोर का ठहाका लगाया कि 'रामविलास पर तो कविता लिखी है, निराला जी पर भी लिखी है, भाई।'

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 43)

रामविलास और निराला ही क्यों, उन्हें बच्चन भी बहुत प्रिय थे। नरोत्तम नागर भी उनके मित्र थे और नागार्जुन तो उनके सबसे अधिक पास थे। इसके विपरीत वह अज्ञेय और निर्मल वर्मा को बिल्कुल पसंद नहीं करते। इसका मूल कारण यह है कि ये दोनों मार्क्सवाद में विश्वास नहीं रखते। अज्ञेय के बारे में उन्होंने स्पष्ट रूप से पूरे लेख में अपने विचार प्रकट किए हैं, जब

अज्ञेय ने नागार्जुन और त्रिलोचन शास्त्री के साथ उनको भी तार सप्तक में लेना चाहा तो उन्होंने स्पष्ट इंकार कर दिया। उसका कारण था— अज्ञेय ने उनकी जो कविताएं लेनी चाही थीं, वे उनके स्वर और स्वभाव को अर्थात् मानसिकता को व्यक्त करने वाली नहीं थीं। इसलिए उन्होंने अनुमति देने से इंकार कर दिया और कहा कि अगर आप मेरे मन की चुनी हुई कविताएं ले सकें तो मैं भेज दूंगा। वह कविता थी 'एक सौ दस का अभियुक्त'। वह उस संकलन में जा नहीं सकती थी इसलिए बात समाप्त हो गई। उनके शब्दों में, 'मैं सप्तक का कवि नहीं हो सका और न उसका कवि होकर अपनी कविता की धारा को बदल सका।'

(विवेक विवेचन, पृष्ठ 166)

अज्ञेय द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को नहीं मानते थे लेकिन फिर भी उन्होंने अपने एक महत्वपूर्ण संकलन *रूपांबरा* में शमशेर, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन आदि से लेकर नामवर सिंह आदि की कविताएं तक शामिल की हैं।

(जनसत्ता, 24 अक्टूबर, 1994, कभी-कभार—अशोक वाजपेयी)

यह सब लिखने का हमारा केवल यही आशय है कि विचारधारा और मान्यताओं को लेकर मतभेद होने पर भी जो कवि है वह तो कवि ही रहता है। इसलिए केदारनाथ अग्रवाल की उपेक्षा करना हर किसी के लिए संभव नहीं था, हुआ भी नहीं। मैंने जैनेंद्र जी को लेकर संस्मरणों के तीन खंडों का संपादन किया था। उसके लिए मैंने केदारनाथ जी से भी संस्मरण भेजने के लिए कहा। उन्होंने उत्तर दिया (अपने 11 जून, 88 के पत्र में लिखा):

'मैं उनके संपर्क में कभी नहीं आया और न उनसे मैंने पत्र व्यवहार किया। जब मैं बी.ए. करके 33-34 में प्रयाग विश्वविद्यालय का छात्र था तब एक बार जैनेंद्र जी इलाहाबाद आए। वह सभा में बोलने जा रहे थे। नरेंद्र शर्मा थे, मैं था... उस समय की उनके बंद गले के कोट वाली छवि याद है। हाथ में छड़ी थी, कभी-कभी गर्दन से लटक जाती थी। बात ही बात करते चलते चले जाते थे। हम सब सुन रहे थे। नरेंद्र शर्मा की समझ में अवश्य ही उनकी बातें आती रही होंगी। तभी वह बीच-बीच में हुंकारा भरते और प्रश्न उछालते थे। कथा साहित्य से मुझे दिली लगाव न था। न किसी नामधारी को जानता था न पीछे-पीछे भागता था। तभी देखा-सुना था जैनेंद्र जी को। इससे अधिक कुछ नहीं जानता जैनेंद्र जी को। उन पर लिखे कुछ लेख पढ़े। मुझे लगा कि वे मेरे काम के नहीं हैं।'

स्पष्ट है कि वह बात को घुमा-फिराकर नहीं कहते थे। मन के भावों को सहज रूप से व्यक्त कर देते थे। लेकिन इससे इतना तो स्पष्ट है कि उनकी रुचि और अरुचि का मापदंड मार्क्सवाद की विचारधारा ही थी। क्योंकि प्रगतिशील आंदोलन को लेकर भी उन्होंने जिस तरह अपने विचार प्रकट किए, उससे भी यही परिलक्षित होता है कि उन्हें तथाकथित बुद्धिजीवियों में (नए कवियों में) विश्वास नहीं होता। उन्हें वह धोखेबाज और बेईमान समझते थे। उनकी भाषा से आप असहमत हो सकते हैं, पर उनकी इस बात में सार है— 'यहां के लोग इस योग्य नहीं हैं कि इनका साहित्य, सोलजर जो लड़ रहा है तिब्बत में, बर्फ में बिचारा गल रहा है देश के लिए या पाकिस्तान के बार्डर में, वह इनका साहित्य पढ़े। क्या लिखते हैं ,

बताइए। किसी के दिल में है प्रेम, सही-सही देखिए आप, टटोलकर देखिए आप। अपने भाई से प्रेम नहीं, पिता से प्रेम नहीं, बहनों से प्रेम नहीं, पत्नी से प्रेम नहीं, समाज से प्रेम नहीं— सिवाय अपने खाने और दारू पीने के, किसी चीज की फुर्सत नहीं। कचहरी में देखिए, कोई सत्य उनके पास नहीं है। क्या जीवन का सत्य देखिए? कभी सोचा, चढ़ाए चले आते हैं लड्डुआ लिए, धोखा देते हैं उसको।'

यहां उनका आशय बांदा कचहरी में हुनमान जी के मंदिर से है। वहां जज, वकील, मुक्किल सब लड्डू चढ़ाते हैं।'

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 67)

इस आक्रोश के पीछे उनकी वही जनचेतना काम कर रही है, जिसकी प्रेरणा उन्हें मार्क्स के दर्शन से मिली। वह अवसरवाद और भ्रष्टाचार पर निरंतर चोट करने से कभी नहीं चूकते। उनका यह आक्रोश मार्क्सवादियों और गैर-मार्क्सवादियों के बीच एकता की जरूरत को लेकर भी प्रकट होता है— 'यह तो वही हुआ हम मुजरा कराएं और सब लेखकों को बुला लें कि देखो भाई, कितना अच्छा गाती है और हम अपना संघ मजबूत कर लें तो ये व्यापकता हमको कभी नहीं जंची। हम चाहते हैं कि ठोस हो और ठोस कार्य के लिए जब तक अंतर्दृष्टि आप नहीं पैदा कर लेंगे...'

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 100)

इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके अंतर में मैत्री या प्यार की धारा नहीं प्रवाहित होती थी। अपूर्वा की कविताओं में जहां वे प्रशासन की अक्षमता पर चोट करते हैं वहीं दूसरी ओर प्रकृति प्रेम के चितरे भी थे वह। चोट की कविता देखिए:

समाधान खोजते / और टटोलते हैं / मन
बहलाउ नरक के नायक / फाइलों में
प्रचारित विज्ञप्तियों की रोशनी जलाए /
कुर्सियों पर आसन जमाए / अघों से न
अघाएं / चातुरी का चंद्रोदय खाएं बचे
लोग / अब शासन और संविधान से
परेशान / जी जान से बहुत घबराएं।

(अपूर्वा, पृष्ठ 64)

चलते आदमी अब नहीं चलते/ सिर्फ
चप्पल जूते/ और कपड़े चलते हैं /
आदमी होने के अहसास से/ वंचित रहते
हैं।

(अपूर्वा, पृष्ठ 94)

और अब देखिए प्रकृति का चित्रण :

मुग्ध / ठगा-का-ठगा खड़ा मैं / चांद
देखता रहा हृदय की / आंखें खोले



कंदारनाथ अग्रवाल अपनी धर्मपत्नी पार्वती के साथ

बंधा-बिधा प्राकृत प्रकाश के / अनपाए प्रिय को अपनाए / जैसे पहली बार
और / रुका-का-रुका रहा शशि/ मुझे देखता हुआ मंडलाकार प्रदीपित
बंधा-बिंधा धू की प्रतिमा के / अनपाए कवि को अपनाए / जैसे पहली बार।

(अपूर्वा, पृष्ठ 72)

इतना ही नहीं, नारी का सौंदर्य भी उनको आकर्षित करता था। अपने भेंटकर्त्ताओं को ऐसी ही अपनी एक कविता की पृष्ठभूमि बताते हुए वह कहते हैं— 'सोवियत थियेटर के 1985 के पहले अंक में उसके पीछे वाले पृष्ठ पर 'एलेना प्रोक्लोवा' की एक फोटो छपी है, मैंने उसे देखा तो मुझे अच्छी लगी और उसने मुझे एक कविता दी :

तुम हो / एक मौन / लावण्य में लीन / लावण्य से उद्भूत / स्वर और
व्यंजनों का / अभूतपूर्व संगम / तुम हो रूपोल्लास / वक्रमुखी आतुरता की
अरदासिते अवहेलना / निसर्ग की निरुपम सर्जना। / धीरे है तुम्हारे शरीर
का अधीर आकर्षण / अनालापित देता दुर्लभ आमंत्रण।

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 125)

जैसा कि पहले भी कहा है, हम किसी भी दृष्टि से उनका मूल्यांकन करने के अधिकारी नहीं हैं। मात्र एक पाठक की प्रतिक्रिया है यह। इस प्रतिक्रिया का अंत उनके और उनकी पत्नी के संबंधों को लेकर करना चाहते हैं। हर महापुरुष के पीछे एक नारी होती है। उनकी सफलता के रहस्य के पीछे भी उनकी पत्नी दिखाई देती हैं। मित्रों से बातचीत करते हुए उन्होंने अपनी पत्नी

की मृत्यु पर कहा था— 'प्राब्लम हमारी यह थी कि जब पत्नी मरी तब अपने आपको संभालना था। (बीच-बीच में अवरुद्ध कंठ को संभालते हुए) वहां बच्चे और बहू थे। तो अपने को हमने संभाला। संभाला कैसे कि सोचते रहे कि आखिर वह मर गई। उनको जीवित समझें कि न जीवित समझें? कैसे समझें? अपने को कैसे ढांडस दें? तो हमने कहा हमारी इनकी चेतना एक थी। जब बीमार थीं तो हमसे कहा एक दफा कि 'बाबूजी हमको छिपा लो।' हम अपना कविता का घेरा डालते थे (फिर भरे हुए गले के कुछ शब्द एकदम अस्पष्ट) तो हमने यह बात डेवेलप की कि पत्नी हमारी चेतना में हैं— स्वप्न में जैसा होता है— आ गई, बैठ गई— बार-बार देख रही हैं। इस तरह की कुछ फीलिंग्स आईं तो उस सिलसिले में हमने उनको उसी तरह लिया:

भीतर रोता / बाहर हंसता / व्यथा
सूर्य-सी/ मुख पर खिलती/
जीने की एक ऐसी क्षमता / मुझको
मिलती / योगी होकर मैं साथ
हूं / संभोगी मन / रह-रह कंपता!

...

न होकर भी तुम हो मेरे पास/ लबालब प्यार से आंकट डुबाए
देखता हूँ तुम्हें दिल और दिमाग में / अव्यवस्थित होता हूँ
आज की भोर नहीं है मेरे सुख का ओर-छोर
कुसुमित हुए हैं अब मेरे पोर-पोर / तुम्हारे संस्पर्श
तुम्हारी दीप्ति से / मैं हूँ / तुम हो यहां / अकेले में एकमेक/
बुझ-गई आग के ऊपर / याद की गर्म राख में /
सुंदर सजीव स्वप्न की तरह / अनुरागमय!

अंत में जैसे उनको विदा देते हुए वह आत्मलीन हो जाते हैं और उनके
अंतर का स्वर गूंज उठता है आकाश में, स्मृति के आकाश में :

जाओ / लेकिन आत्मगंध दे जाओ;
जाते-जाते फिर मुस्काओ / कुंद-हास का सुख दे जाओ।
जाओ, लेकिन व्याप्ति बोध दे जाओ,
जाते-जाते मृत्यु-विजेता / चुंबन देकर, लेकर जाओ।

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 132)

हमने कवि कंदारनाथ अग्रवाल के जीवन के कुछ चित्र उकेरे हैं।
सफलता-असफलता की हमें चिंता नहीं। वह बड़े कवि हैं लेकिन सबसे पहले
वह मनुष्य थे। उनके आसपास जो व्यक्ति थे, उनमें सभी वर्ग के लोग थे।
उनके बारे में उनके उद्गार कवि मित्रों से दूर पुस्तक के लेखकों ने संकलित
किए हैं। वे अत्यंत मार्मिक हैं। एक मित्र के पूछने पर बुद्ध यानी बुद्ध प्रकाश
यादव ने उत्तर दिया- 'बदमासी का किहूँ, दिन में तो स्कूल जाएं जब गांव
में रहें, तब साम को का बदमासी करूँ। सराब कभी नहीं पिया, और कोई ऐब
नहीं रहा।'।

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 138)

कालेज के दिनों के बारे में शंकरलाल दिविया के ये शब्द अत्यंत
महत्वपूर्ण हैं :

'खास बात तो यह है कि आज तक बाबूजी के विषय में यह नहीं
कहा कि बाबूजी कोई गलत काम करते हैं। हमारे पूरे बांदा जिले में बाबूजी
को सब मानवीय समझते हैं।'।

उनकी पत्नी के बारे में उन्होंने कहा- 'बहू जी के बारे में ये है कि अगर
कोई भी आ जाए उनके सामने, इतनी दयावान थीं कि हमसे खुद कहा करती
थीं शंकर, मुंशी जी को खाना दे दो, चाय दे दो, पानी दे दो उनके दिमाग (में)
सबके लिए समभाव है।'।

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 139)

'उनकी हंसी मजाक, होली खेलने की बात कहे, नन्हें देवर लगत हो
हमहु रंग लगाय दियौ। तो कहने लगी बुद्ध तुम्हु? हंसती रहीं। अरे कबहु
डांटत-बांटत नहीं रहीं।'।

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 140)

एहसान साहब कंदार बाबू के बहुत निकट के व्यक्ति थे, अच्छे कवि
और समीक्षक भी थे। उन्होंने कहा- 'मेरा यह कहना है कि मैंने अब तक

जो देखा है वो ये है कि बाबूजी के साथ बड़े सहज भाव में हरेक से बातचीत
होती है। चाहे बुद्ध भाई हो, चाहे शंकर हो चाहे मैं हूँ, पोस्टमैन साहब हों,
चाहे और लोग हों। बाबूजी को जो पूछना है, कहना है, सहज भाव से कह
दिया।'।

उनकी पत्नी के निधन के बाद उनकी मनोदशा की ओर संकेत करते
हुए उन्होंने कहा- 'हालांकि हम यह महसूस करते हैं कि बाबूजी जितना
ज्यादा बातचीत करेंगे उतना ही उनको सेटिस्फेक्सन रहेगा। उतना ही तनहाई
का एहसास- दुनिया से कटने का जो एहसास है, वो कम होगा।'।

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ-142)

उनके आस-पास के व्यक्तियों ने और भी उनके संस्मरण सुनाए, निपट
मानव कंदार बाबू के मित्रों के आने के। हिंदी के साहित्यकार नरेंद्र पुंडरीक
उनके बहुत नजदीक हैं, उन्होंने भी उनके बारे में और उनकी वकालत करने
के बारे में बहुत कुछ कहा है-

'एक बार नागार्जुन जी आए थे। बाबूजी की आदत यह है कि जब
सबेरे जल्दी नींद खुल जाती है तो वह झाड़ू लेकर कमरा साफ करते हैं।
लाइब्रेरी साफ करते हैं, बाहर बरामदा साफ करते हैं। सुबह जब बाबूजी बाहर
निकले तो नागार्जुन जी यहीं बरामदे में लेटे हुए थे। बाबूजी ने सोचा, कोई
'मुवकिल' लेटा हुआ है। उसे उठाने के लिए बैच हिलाई तो बाबा उठकर
खड़े हो गए। बाबूजी एकदम बाबा से लिपट गए। जब हम सुनते हैं तो हमारी
आंखें नम हो जाती हैं।'।

उनके मुंशी ने उनके साथ हुए अपने अनुभव की चर्चा करते हुए उनकी
दयानतदारी और ईमानदारी की बड़े मार्मिक शब्दों में चर्चा की और कहा-
'मेरी हर तरह से इमदाद करते रहे और यही 70 से 86 तक बराबर बदस्तूर
रहा। माताजी बराबर मेरी हर तरह की इमदाद और हमेशा दौरान मोहरी संभाले
रहीं।'।

'इनकी कोर्ट की जिंदगी निहायत ही अच्छी रही। डी.सी.जी. रहे।
सत्तर में रिटायर हुए। जब, उसके बाद भी साफ-सुथरी जिंदगी ईमानदारी से.
.. हां, एक 'बेल' (जमानत) थी। वह दो-तीन जगह से खारिज हुई। हमने
उसे ग्रांट कराया।'।

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ-147)

मुंशी जी कंदार बाबू से इतने जुड़े हुए थे कि जब उन्होंने कोर्ट जाना
छोड़ दिया तो मुंशी जी ने भी किसी दूसरे का मुंशी बनना पसंद नहीं किया।
कहा, 'अब कोई इस तरह का दौरान हाल है ही नहीं। कोई हमारी जो खिदमत
को सराहे या कबूल करे और अब हम इतना कर भी नहीं सकते क्योंकि
वो है बाबूजी वाले इकबाल को, उनके जलाल को कोई नहीं छूता।'।

(कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 148)

तो यह था चित्र उस व्यक्ति का, जो समाज और सत्ता की विसंगतियों
पर गहरे प्रहार करता था, लेकिन अंतर में वह निपट मानव, प्रेमी, संवेदनशील
और हर किसी के दुख-दर्द में सहभागी रहे। वह खरी-खरी बातें इसलिए
कह सके कि उनका अंतर राग-द्वेष से दूर निर्मल है। भले ही हमारा उनसे
मतभेद रहा, पर हम उनकी ईमानदारी और ईसानियत पर कभी उंगली नहीं
उठा सकते। □

बहुत चुप मैं बह रहा

केदार की कविता की बुनियादी चिंता मनुष्य और जीवन है। चूंकि इस जीवन में पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का हस्तक्षेप भयावह है इसलिए वह कविता में अपना पक्ष चुनते हैं। यह पक्ष साधारण मनुष्य के साथ है। इसलिए केदार बुनियादी रूप से यथार्थवादी हैं। पर उनकी कविता प्रगतिवाद के चालू मुहावरों का निषेध करती है। वह प्रगतिवाद के चालू मुहावरों, नारों का उसी तरह निषेध करते हैं जैसे निराला छायावाद का।...यथार्थवादी कविता जो प्रगतिवाद का मूलाधार है उसका अंतिम लक्ष्य मनुष्य और जीवन को बचाना है। केदारनाथ अग्रवाल मनुष्य और जीवन को बचाने वाले संघर्षशील कवि हैं। केदार जी के काव्य संसार और उसके सरोकार पर अरविंद त्रिपाठी

केदारनाथ अग्रवाल 'धरती' और 'धूप' के कवि हैं। यह बात शमशेर ने उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह फूल नहीं रंग बोलते हैं की समीक्षा लिखते हुए कही थी। शमशेर ने आगे कहा है— 'केदार बुनियादी तौर पर एक नार्मल रोमानी कवि हैं छायावाद-रोमानी नहीं। शायद इसीलिए छायावादोत्तर काल में वह प्रगतिशील और फिर मार्क्सवादी कवि हो गए।' गौर किया जाए तो केदारनाथ अग्रवाल की कविता के सिलसिले में दिया गया यह वक्तव्य आज उनकी समूची काव्य उपलब्धियों पर लागू होता है। रोमांटिकता तो छायावाद आंदोलन का मूलाधार रहा है पर कविता के साथ नार्मल रोमान का रिश्ता शायद सनातन है। इसीलिए वह केदारनाथ अग्रवाल, निराला, खुद शमशेर समेत सभी यथार्थवादी परंपरा के कवियों में कमोबेश देखा जा सकता है। केदार की कविता की बुनियादी चिंता मनुष्य और जीवन है। चूंकि इस जीवन में पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का हस्तक्षेप भयावह है इसलिए वह कविता में अपना पक्ष चुनते हैं। यह



कवित्रयी : शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल तथा नागार्जुन

पक्ष साधारण मनुष्य के साथ है। इसलिए केदार बुनियादी रूप से यथार्थवादी हैं। पर उनकी कविता प्रगतिवाद के चालू मुहावरों का निषेध करती है। वह प्रगतिवाद के चालू मुहावरों, नारों का उसी तरह निषेध करते हैं जैसे निराला छायावाद का। अपूर्वा की भूमिका वह साफ कहते हैं : 'इन कविताओं का स्वर और स्वभाव ऐसा है कि प्रचलित मान्यता के बल पर इन्हें प्रगतिशील रचना होने का सौभाग्य न प्राप्त हो सके। लोग तो प्रगतिशील कविता में केवल राजनीति की चर्चा मात्र ही चाहते हैं वे कविताएं जो प्रेम से प्रकृति से आसपास के आदमियों से, लोकजीवन से, सुंदर दृश्यों से, भू-चित्रों से, यथावत चल रहे व्यवहारों से और इसी तरह की अनेक रूपताओं से विरचित होती है, प्रगतिशील नहीं मानी जाती। मेरी प्रगतिशीलता में इन तथाकथित वर्जित विषयों का बहिष्कार नहीं है।' इस वक्तव्य के आलोक में देखें तो केदार प्रगतिवाद के प्रचलित मानदंडों का निषेध हैं। कविता क्रांति के लिए

नहीं लिखी जाती वह व्यापक अर्थों में जीवन और मनुष्य की जीवनासक्ति के लिए लिखी जाती है। कविता राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन जाए, यह और बात है। यथार्थवादी कविता जो प्रगतिवाद का मूलाधार है उसका अंतिम लक्ष्य मनुष्य और जीवन को बचाना है। केदारनाथ अग्रवाल मनुष्य और जीवन को बचाने वाले संघर्षशील कवि हैं।

वह अगर 'धरती' और 'धूप' के कवि हैं तो इसलिए कि वह इस धरती से शोषण, दमन और उत्पीड़न को खत्म करना चाहते हैं क्योंकि यह धरती सबकी है। दूसरी तरफ वह धूप के कवि हैं तो इसलिए क्योंकि उनकी कविता का बहुलांश, जीवन का उल्लास, जीवन की आस्था, जीवन का वैभव, जीवन की संपूर्णता की ओर अग्रसर है। अगर केदार की कविता को 'धरती' और 'धूप' जैसे रूपकों के जरिए समझने की कोशिश की जाए तो काफी मदद मिल सकती है। धरती और धूप का चमकता चेहरा उनकी समूची काव्य यात्रा में साथ-साथ है। पहले केदार की धरती को देखें- नामवर सिंह ने त्रिलोचन को 'धरती का कवि' कहा है। त्रिलोचन की धरती अगर अवध और भोजपुरी समाज है तो केदार की धरती बुंदेलखंड का वह भू-भाग है जिसे व्यक्त करने में केदार का समूचा जीवन खप गया। जिस केन नदी के किनारे केदारनाथ अग्रवाल का जन्म हुआ उसी केन के किनारे उनका उत्सर्ग भी हुआ। उनकी अस्थियां उसी केन नदी में विसर्जित की गईं जहां से कवि का उद्भव हुआ था। केदार का बचपन केन के किनारे पला-पुसा, जवानी उसी केन जल में परवान चढ़ी और बुढ़ापा उसी केन के सहारे बीता। कवि का अवसान भी उसी में हुआ।

केदार की जीवनासक्ति को देखते हुए विचार किया जाना चाहिए कि क्या इस सदी में उनके जैसा दूसरा बड़ा कवि हिंदी में पैदा हुआ है जो अपनी धरती से न सिर्फ प्यार करता हो, जुड़ा हो बल्कि उसे पल-पल जीता रहा हो? नागार्जुन को भी मिथिला से बहुत प्यार था, उनका अंत भी वहीं हुआ, पर वह जीवन भर बेघर रहे। दर-दर भटकते, ठोकर खाते पूरे हिंदुस्तान की खाक छानते रहे। त्रिलोचन का भी यही हाल है। चिरानी पट्टी उन्हें मयस्सर न हो सकी है। इस लिहाज से केदारनाथ अग्रवाल भाग्यशाली कवि रहे जिन्हें आजीवन बांदा के पास का गांव 'कमासिन' नसीब में मिला। यद्यपि कवि जीवन के साथ उन्होंने अपने लिए जो जीविका का साधन वकालत का पेशा चुना वह कहीं से भी उन्हें सुहाता नहीं था। वकालत का पेशा उनके लिए काठ की गाय दुहने जैसा उद्यम था। उन्होंने अपने पेशे के बारे में अनेक मित्रों को लिखा है कि बांदा की कचहरी में मेरा मन नहीं लगता। सारा दिन बैठकछाने में पड़े कविताएं लिखता हूं। इस प्रसंग का जिज्ञा केदार बाबू ने साहित्य अकादेमी पुरस्कार के अवसर पर भी किया था कि 'बांदा की वकील कचहरी से जब प्रायः मैं खाली हाथ उदास घर लौटता था तो पत्नी के हाथ में रुपयों की जगह मैं दिन भर में लिखी कविताएं सौंपता था जिसे स्वीकार करते हुए उन्हें रुपयों से बढ़कर तसल्ली होती थी। कभी जब फाकामस्ती का आलम होता तब भी वह धैर्य और संयम बनाए रखने की सलाह देती थी।' उस मौके पर केदार जी ने मेरे आग्रह पर *हे मेरी तुम* संग्रह से अनेक कविताएं पढ़ी थीं जिनमें उनके दंपत्य जीवन का सुख-दुख और पत्नी प्रेम का गहरा रागबोध झलकता था। काव्य पाठ के दौरान मैंने उनके चेहरे की आर्द्रता देखी थी। उनकी जईफ़ आंखों में पत्नी प्रेम की सजल पुकार थी, भीतर एक विराट हलचल

जिसे वह अपने पोपले मुंह के स्फुट स्वरों में बांधने की कोशिश कर रहे थे। कहना न होगा कि केदारनाथ अग्रवाल ने बांदा जैसे कस्बेनुमा शहर में रहते हुए कवि जीवन के साथ-साथ अपनी जीविका के लिए भी कठिन संघर्ष किया था। ऐसा नहीं कि उनमें वकील की योग्यता नहीं थी बल्कि वकालत के लिए जिस तीन-तेरह करने वाली तिकड़्मी व्यावसायिकता की जरूरत होती है वह उनके सहज सरल कवि व्यक्तित्व में दूर-दूर तक नहीं थी। यह तो अच्छा ही हुआ कि बाद में वह सरकारी वकील बन गए थे जिससे उनका जीवनयापन चलता रहा। उनके वकील पेशे की नियति को जब याद करता हूं तो उनकी इन काव्य पंक्तियों का बिंब सहसा तैरने लगता है- *गर्मी का उमस भरा दिन/ पेंशन पाए चपरासी-सा उदास।*

जीविका के बरक्स उनकी लंबी काव्य यात्रा में उनका काव्य संघर्ष भी कम हैरत अंगेज नहीं है बल्कि एक कवि होने के नाते उनका काव्य संघर्ष नागार्जुन, त्रिलोचन की तरह संघर्षपूर्ण और चुनौतीपूर्ण लगता है। केदार अपनी पीढ़ी में हिंदी के अकेले कवि हैं जिन्होंने कवि कर्म को जीवन साधना का काम माना। साहित्य की राजनीति से कोसों दूर रहे। उन्होंने इस बात की भी कभी परवाह नहीं की थी कि उनके बारे में क्या लिखा जा रहा है। बांदा जैसी छोटी जगह में, जहां साहित्य का कोई 'पावर सर्किट' नहीं था, वह बराबर सृजनरत रहे। लोग बांदा उनसे मिलने जाते रहे पर वह बांदा छोड़ जीवन भर कहीं नहीं गए। जीवन के आखिरी वर्षों में अपने पुत्र के साथ कुछ दिनों के लिए मद्रास जरूर रहे। पर उनका मन 'जहाज के पंछी' की तरह अंततः बांदा में ही रमता था। उनकी मैत्री साहित्य की दुनिया में कम लोगों से थी पर जिनसे थी उनसे उनका वास्ता आजीवन बना रहा। इस लिहाज से केदार और रामविलास की मैत्री बेमिसाल है जो बचपन से लेकर मृत्युपर्यंत बनी रही। इसे देखना हो तो केदार और रामविलास के दुर्लभ पत्रों का अलबम *मित्र संवाद* जैसी कृति देखी जा सकती है। इस दिलचस्प पुस्तक के बहाने सिर्फ दो दोस्तों की दुनिया ही नहीं खुलती है बल्कि प्रगतिशील आंदोलन के लंबे इतिहास का सिलसिलेवार वृत्तांत उजागर होता है। हिंदी में प्रगतिशील साहित्य के इतिहास को जानने के लिए *मित्र संवाद* एक अनिवार्य संदर्भ ग्रंथ है। इसे नियति की विडंबना कहेंगे या न्याय जिसने दोनों मित्रों को लगभग एक साथ ही वापस बुला लिया। रामविलास जी का मृत्यु की खबर केदारबाबू के लिए आघात जैसी थी बल्कि उनकी मृत्यु के कारणों में रामविलास जी की मृत्यु शामिल रही होगी। कहते हैं, अटूट संबंधों को नियति सबसे ज्यादा पहचानती है। रामविलास शर्मा के तुरंत बाद, महीने के भीतर ही केदारनाथ अग्रवाल का अवसान इस तथ्य का सबूत है।

केदार के कवि जीवन की जो बात आज सर्वाधिक आकृष्ट करती है वह है उनका धरती के प्रति समर्पण। धरती यानी अपनी जन्मभूमि जिसे उन्होंने कर्मभूमि बनाया, साथ ही उस धरती के लोगों को अपना काव्य नायक बनाया। हिंदी में जनता का कविता लिखने वाले अनेक क्रांतिकारी कवि हुए पर जनता से जिस तरह जुड़कर उनके साथ रचे-बसे, जिस तरह जनता की कविता केदारनाथ अग्रवाल लिख सके, वह साहित्य के इतिहास में विरल है। लेकिन उन्होंने क्रांति के बजाय जीवन का कविता लिखी जैसे निराला ने लिखी। रामविलास शर्मा इसीलिए केदारनाथ अग्रवाल को प्रगतिशील कविता का आरंभिक चरण मानते हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार केदारनाथ अग्रवाल

ने 1932 से 1947 तक क्रमशः हिंदी कविता में यथार्थवाद का विकास किया। निराला ने प्रगतिशील धारा की कविताएं (कुकरमुत्ता, आदि) बाद में लिखी जबकि उस जमीन पर केदारनाथ अग्रवाल पहले ही लिखना शुरू कर चुके थे। रामविलास जी कहते हैं, इस तरह 'केदार ने छायावादी कविता लिखना और उससे बगावत करना एक ही साथ शुरू कर दिया था।' रामविलास जी की दृष्टि में ये दोनों कवि 'हिंदी में क्रांतिकारी यथार्थवाद के संस्थापक कवि हैं।' कहना चाहिए, रामविलास जी की यह टिप्पणी केदार के ऐतिहासिक अवदान को रेखांकित करती है। यद्यपि इस स्थापना में विवाद की पर्याप्त गुंजाइश है कि हिंदी में यथार्थवादी कविता की नींव सबसे पहले किसने रखी? पर इतना तय है कि हिंदी कविता में यथार्थवाद को विकसित करने में निराला के बाद जिन कवियों का योगदान है, उनमें केदारनाथ अग्रवाल अग्रगण्य हैं।

केदारनाथ अग्रवाल को यथार्थवादी कविता विकसित करने में जितनी मदद मार्क्सवादी दर्शन से मिली उससे कहीं ज्यादा बुंदेलखंड की जनता के लगाव से। वह देख रहे थे कि इस देश की साधारण जनता किस तरह जीवन संघर्ष में पिस रही है। यहां का किसान और मजदूर रात-दिन अपना जांगर परेने के बावजूद गरीबी, अशिक्षा और पिछड़ेपन में डूबा है, जबकि साहूकार, जमींदार और शासक वर्ग उनकी ठठरी पर ठाठ कर रहे हैं। वर्ग वैषम्य की इसी आग ने केदार को सामाजिक संघर्ष का अप्रतिम कवि बनाया। इस सामाजिक सच को उन्होंने अपना काव्य सत्य बनाया और आजीवन इसी सत्य के अन्वेषण में जूझते रहे। केदार की कविता में किसान और मजदूर वर्ग से जो बेपनाह प्यार है वह श्रम की मूल्यवत्ता के कारण है। श्रम जीवन के प्रति उनकी इतनी अगाध आस्था है कि उनकी समग्र कविताएं श्रमिक जीवन का कारखाना लगती हैं और किसान जीवन की वह संपूर्ण थाती जो खलिहान में 'उकांव' का शंक्ल में एक जगह इकट्ठा कर दी गई है। उनके कवि-मन के भीतर एक औसत खेतिहर मजदूर और किसान के लगाव इस तरह काम करते हैं जैसे उनका कवि पैदा ही

हुआ है इन सबकी मुक्ति के लिए। शायद इसीलिए रामविलास जी ने केदारनाथ अग्रवाल को 'श्रम का सूरज' कवि कहा है। श्रम का यह सूरज-कवि भारतीय किसान और मजदूर की नियति को उससे कहीं अधिक जानता है। इसीलिए केदार की कविता में भारतीय कृषि जीवन और मजदूर जीवन का यथार्थ सबसे ज्यादा यथार्थपरक और सहज है। कुछ आलोचकों का कहना है कि केदार यथार्थ को ऊपर से देखते हैं

यथार्थ के भीतर प्रवेश करके उस जटिलता का साक्षात्कार नहीं करते जहां वास्तविक यथार्थ झाड़ी में पक्षी की तरह छिपा हुआ है। इसीलिए उनकी ज्यादातर कविताएं लोकजीवन का बाहरी एक्सपोजर भर हैं, लोकजीवन का भीतरी एक्सपे नहीं। जबकि दिलचस्प बात यह है कि वह जटिलता को सहज बनाकर पेश करते हैं। किसान और मजदूर जीवन की जितनी करुण गाथा आपको केदार में मिलेगी अन्यत्र इतनी सजीव नहीं मिलेगी। केदार की जिस बात को हम उनकी कमजोरी मानते हैं दरअसल यही उनकी शक्ति है। सहजता काव्य का दोष नहीं बल्कि गुण है। जो कवि जटिलता के आग्रही हैं वह कोई जरूरी नहीं वे जटिल भाव विन्यास वाली कविताएं लिखकर इतिहास में महान कविता दर्ज कर रहे थे। जबकि हिंदी कविता के इतिहास में महान कविता हमेशा 'सहज कविता' रही है। दुनिया में तुलसीदास अगर महान कवि हैं तो इसलिए क्योंकि वह सहज कवि हैं। 'सहज कविता' का अर्थ साधारण कविता नहीं है। केदारनाथ अग्रवाल सहज कवि हैं। सहज कविता लिखने की यह कला उन्होंने भारतीय कविता की महान परंपरा से अर्जित की है जहां सहजता ही विशिष्टता है। केदार की कविताओं की सहजता के इस गुण को नजरअंदाज करना कविता की बुनियादी अवधारणा को अस्वीकार करना होगा। इस सिलसिले में यह तथ्य नोट करने का है केदारनाथ अग्रवाल उन विरले प्रगतिशील कवियों में एक हैं जिन्होंने अपने लंबे सर्जनात्मक कालखंड में कविता में आने वाले आंदोलन-आंधियों को अपने ऊपर से गुजर जाने दिया और हमेशा पश्चिम की ओर पीठ करके भारतीय कविता की परंपरा के प्रगतिशील और उदात्त गुणों को अपनी कविता के भीतर हमेशा प्रवाहित किया। हिंदी के जिन कवियों पर आज भी पश्चिम का आतंक 'डिमाकिलज' की तरह झूल रहा है उन्हें केदार के आत्मसंघर्ष से सीखना चाहिए कि कविता को किस तरह 'स्थानीयता' और 'जातीयता' का माडल बनाया जा सकता है। महज यह आरोप मढ़ देने से कि उनमें जटिलता का

अभाव है इसलिए वह हमारी कविता-परंपरा के सूत्रधार नहीं हो सकते, यह कवि के साथ ज्यादा तो होगी ही, साथ ही भारतीय कविता की विकसित परंपरा के साथ ऐतिहासिक अन्याय होगा।

सच्चाई यह है कि अपनी कविता के जरिए केदार ने बुंदेलखंड की धरती का भूगोल रचा है वह कविता में स्थानीय रंगों का हिंदी कविता में पहला उन्मेष है। इधर बीस-पच्चीस वर्षों की कविता में लोकजीवन का कविता का जो शक्तिशाली ट्रांसमीटर



अद्वैत मैत्री के पल : केदारनाथ अग्रवाल और डा. रामविलास शर्मा

तैयार हुआ है इसमें विद्युत प्रवाह करने वाले केदारनाथ अग्रवाल खरीखे कुछ ही कवि हैं। हिंदी के नागर कवियों को इस बात का तिलमिलाहट भरा मलाल है कि कविता में लोकजीवन की शक्ति का इतना प्रभावशाली उभार कैसे हो गया? यह हकीकत है कि लोकशक्ति के इसी उभार से घबराकर अति नागर कवि अकेले, पस्त और किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए हैं। कविता के समकालीन इलाके में इनकी नियति जयंत कौए जैसी हो गई है— हा! हतः।

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य संसार पर अगर दृष्टिपात करें तो अंदाजा लगाया जा सकता है किसान, मजदूर और प्रकृति पर लगातार कविता लिखने वाला यह कवि एकरस, ऊसर या बंजर नहीं दिखाई देता बल्कि एक ही विषय पर लिखी उसकी दर्जनों कविताएं पिछली भूमि को छोड़कर नई भूमि का उत्खनन लगती हैं। अगर कविता का सर्वेक्षण किया जाए तो केदार शायद इस दृष्टि से हिंदी के बिरले कवि हैं जिन्होंने किसानों-मजदूरों गरीब-गुरबों पर सबसे ज्यादा कविताएं लिखी हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि उनकी कविता में 'लोहा' शब्द की आवृत्ति बार-बार होती है। यह लोहा प्रतीक है इस देश के श्रमजीवी समाज का जिसको संघर्ष की राह से मोड़ना आसान नहीं है— मैंने उसको जब-जब देखा/लोहा देखा/ लोहा जैसा तपते देखा, गलते देखा/ ढलते देखा/ मैंने उसको गोली जैसा चलते देखा। जबकि दूसरी जगह यही लोहा पूंजीवाद का लौह कारागार बन जाता है जहां टक्कर श्रमिक की हड्डियों से होती है— कैसे जिएं कठिन है टक्कर/ निर्बल हम बलहीन हैं मक्कर/ तिल इन ताबड़तोड़ कराकर/ हड्डी की लोहे से टक्कर।

दिलचस्प बात यह है कि केदार ने अपनी कविता में जिन दीन-हीन, दलितों, उपेक्षित, वंचितों की सर्जना की है वे जीवन से दुखी तो हैं पर निराश नहीं हैं क्योंकि उनके पास उम्मीद की एक किरण हमेशा उनकी आंखों में शेष है। उसके जीवन की कुल जमा पूंजी है— संघर्ष। इस संघर्ष के बिना वे जी नहीं सकते क्योंकि संघर्ष ही जीवन है और जीवन में संघर्ष स्वप्न पैदा करता है— आंख खुली कर उठा— कलेजा कड़का/ धूल झाड़कर सोता मानव फड़का/ रात ढली दिन हुआ उजेला दौड़ा/ ताबड़तोड़ चला बज उठा हथौड़ा। श्रम जीवन की इन कविताओं में श्रम की अक्षम संघर्षशील चेतना तो है ही साथ ही श्रम सौंदर्य को देखने और रचने की सामर्थ्य का भी पता चलता है। केदार श्रम जीवन के जितने बड़े कवि हैं उतने ही बड़े श्रम सौंदर्य के अन्वेषी भी। उनके श्रम सौंदर्य की व्याख्या करते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपनी सटीक व्याख्या में कहा है— 'प्रातिशील कवियों में केदारनाथ अग्रवाल ने हथौड़े और हंसिया को भी कवि कर्म में जितना सौंदर्य विधायक बनाया है उतना और किसी ने नहीं। हथौड़ा तो केदार का प्रिय विषय है। वह हथौड़े से उसी तरह कविता बनाते हैं जैसे लोहार हल का फाल। हथौड़ा खुद लोहे से बनता है और लोहे से निर्माण भी करता है जैसे कवि मनुष्य है और कविता से मनुष्य गढ़ता है। लोहा काला होता है, ताप (मनुष्य के पक्ष में संवेदना) देने से लाल हो जाता है। लाल रंग की व्याख्या करने की जरूरत नहीं है। ताप संवेदना लोहे को लाल कर देती है। फिर हथौड़ा उन्हें गढ़ता है। खूबी यह है कि हथौड़ा, हथौड़ा चलाने वाले को गढ़ता है। एक नहीं, करोड़ों। ये गढ़े हुए करोड़ नरसिंह हैं जो फौलादी हैं। लाल लोहा फिर फौलादी ही बनता है चेतना प्राप्त करके। जैसे हथौड़ा चलाने का काम, वैसा ही कविता करने का काम। कविता श्रमिक चेतना पैदा करती है। यह कवि और श्रमिक की यानी कलाकार और शिल्पी

की एकात्मकता है जो समाजवादी सौंदर्य की विशेषता है। काला लोहा अपने रंग से भी श्रमिक-दलित की दृढ़ता का प्रतीक है। इलाहाबाद के पथ पर गुरु हथौड़े से पत्थर तोड़ने वाली का रंग काला था— श्याम तन भर बंधा यौवन. .. फौलादी ही इरादे वाले श्रमिकों की चोटों से नई दुनिया बनेगी। फौलाद, श्रम, संकल्प, ये सब मिलकर दुनिया की अपनी (जाती) ताकत का स्वरूप है। यह श्रम, संकल्प, चेतना ही समाजवादी सौंदर्य बोधात्मक सर्जना है।' (वर्तमान साहित्य : शताब्दी कविता पृष्ठ 110)।

श्रम सौंदर्य की इसी बुनियाद पर केदार मानवीय सौंदर्य का भविष्य देखते हैं और उसी की सर्जना करते हैं। श्रम सौंदर्य का इतना विविधवर्णी वर्णन अन्य कवियों में कम दिखाई देगा, जहां श्रम का इतना बहता पसीना दिखाई देता हो। इस बहते हुए पसीने में ही केदार मनुष्य सौंदर्य निहारते हैं। इस सौंदर्यबोध में मनुष्य के सुख-दुख, आशा-निराशा, उत्थान-पतन की गाथाएं छिपी हैं, इस श्रम सौंदर्य की एक बड़ी खूबी यह है कि वह बार-बार एक ईमानदार आदमी का सपना देखती है। केदार की कविता व्यापक अर्थों में श्रम जीवन का सौंदर्यबोध है, साथ ही श्रम जीवन का स्वप्न भी है जिसके आर-पार संघर्ष की लड़ाई जारी है। कहा जा सकता है कि यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक समाज में गैर बराबरी और असमानता की खाई बनी रहेगी। इस लड़ाई में केदार की अधिकांश कविताएं हमारे काम की चीज लगती हैं— एक स्वप्न, एक जागरण मंत्र की तरह समाज की सोई आत्माओं को भीतर से जगाती हुई। उनकी प्रसिद्ध कविता — 'एक हथौड़े वाला घर में और हुआ' श्रमिक जीवन में उल्लास की कविता है। एक श्रमिक के घर में जब बच्चा पैदा होता है तो आम घरों में पैदा होने वाले बच्चों की तरह घर में यह सपना नहीं देखा जाता कि मेरा बेटा जज, कलक्टर बनेगा, बल्कि वहां इस बात के लिए घर भर के चेहरों पर चमक होती है कि चलो कमाने वाला एक और हाथ आया। केदार चाहते तो मध्यवर्गीय संवेदना के तहत कामगार के घर में बच्चा पैदा होने के बाद लोगों में आला अफसरी का सपना दिखा देते पर एक यथार्थवादी कवि होने के नाते उनके लिए ऐसी कल्पना 'यथार्थ' के साथ ज्यादाती होती। केदार ऐसा नहीं करते। वह गरीबों के भीतर वही सपना पाल सकते थे जो जिंदगी की हकीकत है। इस हकीकत से आंख चुराना केदार जैसे धरती के कवि के लिए संभव नहीं था। इसलिए बुनियादी तौर पर वह जितने नार्मल रोमानी कवि हैं उतने ही गहरे यथार्थवादी कवि। उनकी काव्यानुभूति का बनावट और काव्य संस्कार में देसी समाज का यथार्थबोध और देसी जीवन का नार्मल लिрикल रोमान गहरे स्तर पर अन्यान्याश्रित रूप में जुड़ा हुआ है। इसे समझे बिना केदार की कविता का विश्लेषण करना गैर इंसाफी होगी।

आरंभ में जहां मैंने शमशेर के हवाले से जिस नार्मल रोमान की चर्चा की है उस परिप्रेक्ष्य में देखें तो केदार धरती के समानांतर प्रकृति और मनुष्य के साहचर्य से विकसित हुआ है। बुंदेलखंड के ऊबड़-खाबड़ भू-भाग के बीच घूमती हुई नंग-धड़ंग प्रकृति को जिस भोलेपन के साथ केदार ने भर आंख निरखा है उसे वह भूल नहीं पाते [प्रकृति से उनका रिश्ता घूमंतू यायावर रसिया का नहीं है बल्कि असीम सुंदरी प्रिया की तरह है जिसे बिना देखे वे रह नहीं पाते। बांदा के आस-पास की बंजर जमीन जैसे कवि के जीवन में उर्वर प्रदेश हो, जिसकी उर्वरा शक्ति पर वह जान छिड़कता हो। इन प्राकृतिक वर्णनों में कहीं-कहीं केदार इतने बेसुध हो जाते हैं कि वह दुनिया जहान को भूलने

लगते हैं। प्रकृति मूलक कविताओं में कवि की काल्पनिकता, संगीतमयता, सूक्ष्म ऐंद्रिकता, गहन प्रेम की कातरता, चाक्षुष बिंबों और प्रतीकों की महीन बुनावट देखी जा सकती है। इस प्रसंग में केदार की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वह निराला के बाद दूसरे ऐसे हिंदी के प्रयोक्ता कवि हैं जिन्होंने प्रकृति को जीवन और मनुष्य से अलग करके नहीं बल्कि एक-दूसरे का अवलंबी बनाकर पेश किया है। कुछ इस तरह जैसे एक के बिना दूसरे का जीवन अधूरा है या यह कहें कि दोनों एक-दूसरे के बिना जी नहीं सकते। वह इस तरह प्रकृति और मनुष्य के रिश्ते की पहचान एक दूसरे में घटित करते हैं। इस तरह वह छायावादियों में पंत से अलहदा कवि ठहरते हैं जो प्रकृति को शुरू से लेकर अंत तक रहस्य की तरह देखते थे। केदार प्रकृति को रहस्य नहीं बनाते बल्कि प्रकृति को मनुष्य के लिए जीवनदायी रहस्यवाहिनी बनाते हैं। कहना न होगा कि इधर की कविता में प्रकृति और मनुष्य के रिश्ते की जो अत्यंत उष्ण और मार्मिक पहचान संभव हुई है उसमें केदार की कविताएं विरासत के तौर पर खाद-पानी का काम देती हैं। बल्कि राजेश जोशी जैसे कवि तो इसे चुनौती की तरह मानते हैं कि केदार के प्रकृति वर्णन में जो सहजता दिखती है उसे उस तरह लिखना हमारे लिए कठिन काम है।

इस प्रकृति संसार में केन नदी से कवि का रिश्ता प्रेयसी जैसा है। केन नदी की दर्जनों छवियां उसके काव्य संसार में फैली हुई हैं। कई कविताओं में केन नदी से ऐसी मनुहार की गई है जैसे यह नदी कवि की कोई रूठी प्रिया हो। केन नदी से केदार के आदिम संबंध लगते हैं। वह उनके बचपन, युवावस्था और बुढ़ापे के साथ उनके अवसान का भी नहीं है। ऐसे में कवि का इस नदी से रिश्ता जन्म-जन्मांतर का लगता है। शायद इसलिए लोगों ने केदार को 'केन किनारे का कवि' कहा। इस रिश्ते के बारे में रामविलास जी लिखते हैं : 'मेरा अनुमान है कि केदार ने जिस नदी में देवताओं को डूबते देखा था वह गंगा नदी केन थी ...दिन हो चाहे रात, नदी की ओर संकेत भी हो तो समझ लेना चाहिए यह नदी केन है' केदार की प्रकृति एक विशेष अंचल की प्रकृति है लोककवि आंचलिक हुए बिना रह नहीं सकता। केन के साथ केदार का जो आत्मीय संबंध है वह और किसी नदी के साथ हो नहीं सकता।' (प्रगतिशील काव्यधारा पृष्ठ 67-69)

केदार की प्रकृतिमूलक कविताओं में जो ब्यौरे आते हैं वे इतने सहज और रूपाकर्षित करने वाले हैं कि उनके यहां प्रकृति हमेशा बोलती मिलती है। 'बादल को घिरते देखा है' नागार्जुन की प्रसिद्ध कविता है, पर इसी कविता के बरक्स केदार की अगर 'नागार्जुन के बांदा आने पर' कविता को देखा जाए तो वहां मित्र के बांदा आने पर आषाढ़ के बादलों से स्वागत करने के लिए बरसने की जो याचना की गई है वह इतनी सहज और मंत्रमुग्ध करने वाली है कि पाठक कवि की भावदशा से अभिभूत हो उठता है। केदार प्रकृति का श्रृंगारहीन ही करते बल्कि प्रकृति की गोद में पलने-पुसने वाले जीव-जंतुओं की कुशल क्षेम से लेकर उनके रंग-राग, जन्मोत्सव का भी ख्याल रखते हैं। इस कविता में देखिए कवि गिलहरी का कितने तन्मय भाव से जन्मदिन मना रहा है : नीम के पेड़ पर/ चढ़ी बैठी /आज अपना जन्मदिन/ मनाती है / सखी सहेलियों के साथ/अल्हड गिलहरी / जैसे कोई राजकुमारी/ राजमहल के अंतरंग में/ मनाए अपना जन्मदिन/ राजपरिवार के साथ। एक कविता में फूल अनार को देखकर कवि बाल सुलभ कौतुहल के साथ पूछ बैठता है : काश मैं भी फूलता/ मेरे भाई अनार। कहना चाहिए, केदार ने प्रकृति

को बहुत निर्वसन होकर न सिर्फ देखा है बल्कि भोगा और जिया है। ऐसी प्रवृत्ति कवि ने गहरी जीवनासक्ति से अर्जित की है जो इसलिए संभव हुई है क्योंकि केदार बुंदेलखंड की धरती और प्रकृति से उसी तरह जुड़े थे जैसे एक विशाल वृक्ष पृथ्वी में शायद अपनी विशाल जड़ों में बंधा होता है : पेड़ नहीं/ पृथ्वी के वंशज हैं/ फूल लिए/ फल लिए/ मानव के अग्रज हैं।

अंत में केदार की प्रेम कविताओं के सिलसिले में उनके दांपत्य प्रेम की चर्चा जरूरी समझता हूं। मुझे स्मरण नहीं कि दांपत्य प्रेम की जितनी सघन और मार्मिक अनुभूति केदार के काव्य में संभव हुई है उतनी हिंदी साहित्य के इतिहास में किसी दौर के किसी कवि में प्राप्य है। वैसा प्रेम आविष्कार समकालीन काव्य में अलभ्य दिखता है। हमारे यहां ज्यादातर प्रेम कविताएं प्रेमिकाओं पर लिखी जाती हैं, भले ही वे काल्पनिक क्यों न हों। पर एक कवि-प्रेमी पत्नी के मुकाबले प्रेमिका को कितना जानता है, यह तथ्य हर प्रेम करने वाला बेहतर जानता है। रघुवंश महाकाव्य में कालिदास ने महाराज अज की पत्नी इंद्रमती के आकस्मिक अवसान पर अज-विलाप का जो मार्मिक उद्गार दर्ज किया है, मेरा ख्याल है, दांपत्य प्रेम के दहन का ऐसा उदाहरण विश्व साहित्य में दुर्लभ है। इसी परंपरा में दूसरी कोशिश प्रसाद के 'आंसू' काव्य में दिखाई देती है। इसके अलावा मुझे दांपत्य प्रेम सिर्फ केदारनाथ अग्रवाल में दिखाई देता है। केदार की प्रेम कविताओं में दांपत्य प्रेम की यह अनुज अपनी परंपरा के पुनराविष्कार की उपज लगती है। इस दृष्टि से केदार प्रेम कविताओं के प्रतिमान बन गए। वह शमशेर से बड़े प्रेम-कवि लगते हैं जिनके पास 'शमशेर से ज्यादा बड़ी प्रेम की दुनिया है। शमशेर के पास प्रेमिकाएं हैं प्रेम करने के लिए, जबकि केदार दांपत्य प्रेम की आश्रय पत्नी में ही प्रेमिका का चेहरा देखते हैं। यानी केदार में पत्नी और प्रेमिका के दो चेहरे नहीं हैं, एक हैं।

केदार की इन प्रेम कविताओं को पढ़ते हुए लगता है कि उन्हें दुनिया में सबसे ज्यादा भरोसा प्रेम से ही है। कवि को पक्का इत्मीनान है कि इस प्रेम को काल भी नहीं जीत सकता : प्यार तुम्हारा/ प्रबल/ प्रवर है मिला मुझे/ कर रहा अमर है। नहीं मिलेगी। विजय काल को/ जिसमें व्यापित/ हार-हर है। इन पंक्तियों में 'हार-हर' पर गौर कीजिए। यह हार हर काल का 'हार' है, जिससे कवि का प्रेम डरता नहीं। जैसे शमशेर कहते हैं : काल तुझसे होड़ है, मेरी! काल से वही कवि होड़ ले सकता है जिसने जीवन और कविता से बेपनाह प्रेम किया हो। कुछ कवि जो जीवन में सच्चा प्रेम नहीं कर पाते— वे सोचते हैं— चलो, कविता में प्रेम कर लेंगे। ऐसे कवियों की कविताएं काल के सामने क्या खाक टिकेंगी? केदार की दांपत्य प्रेम की कविताएं चूंकि सच्ची, सरल और सहज हैं इसलिए अपनी ईमानदारी की अभिव्यक्ति के नाते काल को भी चुनौती दे डालती हैं। उल्लेखनीय हैं कि केदार की ये प्रेम कविताएं पकी उम्र के प्यार का आस्वाद देती हैं जिनमें क्षयी रोमांस नहीं है न कोरी भावुकता, जीवन के सुख-दुख के ताने-बाने से बुनी गई एक ऐसी प्रेमगाथा है जहां दैनिक भोग नहीं, त्याग है। पश्चिम के प्रेम के बरक्स भारतीय प्रेम की उठान : तुम मेरी / मैं हुआ तुम्हारा / हम दोनों ने तन-मन वारा / रहा न कोई कूल किनारा / सिंधु हुआ अनुराग हमारा-प्यार से तुम मुझे जीतीं / प्यार से मैं तुम्हें जीता/ प्यार से संसार चलता / प्यार से संसार फलता। दरअसल केदारनाथ अग्रवाल के लिए प्रेम इस जीवन में एक प्रार्थना है। □

कविता को जीवन से अलग नहीं रखा !

केदारनाथ अग्रवाल हिंदी के मूर्धन्य प्रगतिशील कवि थे और हिंदी के प्रगतिवादी आंदोलन से उनका शुरू से संबंध था। वह इस आंदोलन के तमाम उतार-चढ़ावों से होकर गुजरे थे और इसके पूर्व दौर में रचना तथा संगठन दोनों ही स्तर पर सक्रिय रहे। इसलिए एक ओर उनकी रचनाओं में इस आंदोलन की संपूर्ण विकास प्रक्रिया को देखा जा सकता है तो दूसरी ओर समय-समय पर लिखे गए उनके लेखों और टिप्पणियों से आंदोलन की वैचारिक स्थिति का भी पता चल सकता है। कह सकते हैं कि केदार की कविताएं और उनके विचार हिंदी के प्रगतिशील आंदोलन के आधारभूत दस्तावेज पेश करते हैं। केदार जी की वैचारिकता का विवेचन रामकृष्ण पाण्डेय द्वारा

कवि केदारनाथ अग्रवाल ने साहित्य और समाज के विभिन्न पक्षों पर और विशेष रूप से साहित्य से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। ये विचार उनके संकलनों की भूमिकाओं में, विभिन्न भेंटवार्ताओं में, मौके-मौके पर लिखी गई उनकी टिप्पणियों में तथा सभाओं और गोष्ठियों के उनके भाषणों में बिखरे पड़े हैं। अब इनमें से अधिकतर विभिन्न पुस्तकों में प्रकाशित हैं। इन्हें केदार जी का गद्य-साहित्य भी कहा जा सकता है। यह साहित्य उनकी रचना-प्रक्रिया को भी व्याख्यायित करता है।

केदारनाथ अग्रवाल हिंदी के मूर्धन्य प्रगतिशील कवि थे और हिंदी के प्रगतिवादी आंदोलन से उनका शुरू से संबंध था। वह इस आंदोलन के तमाम उतार-चढ़ावों से होकर गुजरे थे और इसके पूर्व दौर में रचना तथा संगठन दोनों ही स्तर पर सक्रिय रहे। इसलिए एक ओर उनकी रचनाओं में इस आंदोलन की संपूर्ण विकास प्रक्रिया को देखा जा सकता है तो दूसरी ओर समय-समय पर लिखे गए उनके लेखों और टिप्पणियों से आंदोलन की वैचारिक स्थिति का भी पता चल सकता है। कह सकते हैं कि केदार की कविताएं और उनके विचार हिंदी के प्रगतिशील आंदोलन के आधारभूत दस्तावेज पेश करते हैं। केदार की रचनाओं में यह आंदोलन अपने मूल रूप में उपस्थित है।

अपने प्रथम प्रकाशित काव्यसंग्रह *युग की गंगा* में केदार जी ने लिखा है कि 'भौतिकवादी शोषण विरोधी इतिहास आरंभ होता है।' इस तरह उन्होंने हिंदी के प्रगतिशील साहित्य की प्रेरणा के आरंभिक स्रोत की तलाश भारतेंदु युग में ही की है। उन्होंने भारतेंदु युग का महत्व इस बात में देखा है कि भारतेंदु ने ही पहली बार देश के आर्थिक शोषण को देखा और समझा तथा देशवासियों को अपनी रचनाओं के जरिए अंग्रेजों के इस कृत्य की जानकारी दी। भारतेंदु के बारे में केदार जी ने लिखा है कि 'वे पहले भौतिकवादी थे।'

इसी भूमिका में केदार जी ने हिंदी साहित्य के शोषण विरोधी इतिहास पर एक संक्षिप्त टिप्पणी भी लिखी है। जिसमें उन्होंने धार्मिक-राजनीतिक आधार

पर रचना और रचनाकारों पर विचार करते हुए विभिन्न कालों की मानसिकता निर्धारित की है। *युग की गंगा* 1947 के मार्च में छपी थी। तब तक रामचंद्र शुक्ल का *हिंदी साहित्य का इतिहास* छपकर समादृत हो चुका था। और भी इतिहास लिखे जा चुके थे। पर, केदार जी ने हिंदी साहित्य के जिस शोषण विरोधी इतिहास का प्रस्ताव किया, वैसा कोई इतिहास नहीं था और न आज तक समग्र रूप से लिखा गया है। केदार जी की इतिहास-दृष्टि साहित्य को समाज से छोड़, सभी आर्थिक-राजनीतिक अवस्थितियों से जोड़कर देखने की थी।

यह जानना महत्वपूर्ण होगा कि केदार जी ने हिंदी साहित्य के इतिहास को किस रूप में देखा। केदार जी लिखते हैं : 'वस्तुजगत की मानसिक प्रक्रिया को कवि अपनी भाषा द्वारा कविता के रूप में व्यक्त करता है। किंतु मानसिक प्रक्रिया को कवि के अस्तित्व से परे समझना भूल होगी। वैसे ही कवि के व्यक्तित्व को भी आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से निर्लिप्त मानना भूल होगी। वास्तव में आर्थिक आधार पर ही समाज का निर्माण होता है। जब जैसी अर्थ नीति होती है, वैसी ही समाज नीति होती है; वैसी ही रणनीति होती है; और वैसी ही संस्कृति और सभ्यता होती है। इसलिए कवि अथवा उसके व्यक्तित्व को धर्मनीति का अंश ही समझना चाहिए। कवि की विचारधारा और भावधारा दोनों ही अर्थनीति से निःसृत होती हैं, इसलिए कवि के व्यक्तित्व को कल्पना लोकवासी देवता का व्यक्तित्व नहीं समझना चाहिए।'

साहित्य और उसके इतिहास को इस सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के बाद केदार जी ने प्रमाणस्वरूप लिखा है कि, 'भारतीय साहित्य के अध्ययन से इसकी पुष्टि होती है।' इसके बाद भारतीय साहित्य के इतिहास पर एक नजर डालते हुए उन्होंने उसकी धार्मिक-सामाजिक पृष्ठभूमि की व्याख्या की है और इस निष्कर्ष पर पहुंचाया है कि आर्थिक आधार बदलने से मानसिक प्रक्रिया में भी परिवर्तन होता है। इस सिलसिले में उन्होंने हिंदी

साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों पर टिप्पणी की है और, इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'भारतेंदु काल से ही आधुनिक हिंदी कविता का भौतिकवादी, शोषण-विरोधी इतिहास आरंभ होता है।' इस तरह अपनी इस भूमिका में उन्होंने हिंदी की साहित्यिक परंपरा की भौतिकवादी दृष्टि से विकास की प्रक्रिया निर्धारित की है।

संभावतः केदार जी मुक्तिबोध के बाद हिंदी के एकमात्र ऐसे प्रगतिशील कवि हैं जिन्होंने कविता और अपनी कविताओं की रचना प्रक्रिया पर इतना अधिक कहा और लिखा है। अपनी

कविताओं की रचना प्रक्रिया पर तो मुक्तिबोध ने भी इतना नहीं लिखा है। केदार जी ने प्रगतिवादी साहित्य आंदोलन की पृष्ठभूमि का हवाला देते हुए सन् छत्तीस तक के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक स्थितियों का उल्लेख किया है तथा बताया है कि साहित्य के क्षेत्र में उसकी समानांतर प्रतिक्रिया हुई और परंपरागत साहित्यिक अवधारणाओं का आकर्षण कम होने लगा। उनके अनुसार इस परिस्थिति के परिणामस्वरूप 'साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के छद्मवेशी मानववाद का...पदफाश होने लगा। अपने देश में राष्ट्रीय समता की भावना उत्पन्न हुई। स्वाधीनता प्राप्त करने की लड़ाई का संघर्ष उत्तरोत्तर तीव्र होता गया और जन-जीवन में व्याप्त जड़ता टूटने लगी। किसान-मजदूर में अपने अधिकारों के लिए ललक पैदा हुई और वे राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे आंदोलन में सम्मिलित होकर अपना सक्रिय सहयोग देते रहे।'

उन्होंने हिंदी के इस नए युग को समाजवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद और मार्क्सवाद का युग घोषित करते हुए लिखा है कि 'अब हिंदी की कविता न रस की प्यासी है न अलंकार की इच्छुक है और न संगीत की तुकांत पदावली की भूखी है। भगवान उसके लिए व्यर्थ है। आज जिसके कि राजा शासक हैं, पूंजीपति पोषक हैं। अब वह बनना चाहती है- किसान की वाणी, मजदूर की वाणी, जन-जन की वाणी।' किसान और जन-जन की यह वाणी बनने के लिए कवि को चाहिए कि 'वह अपनी निजता से निकलकर ऐसी इकाई बने जो समष्टि की हो सके और मानव अधिकारों को निरंतर पुष्ट किए रहे।' उन्होंने अपने को अपनी निजता से मुक्त करने का प्रयास किया।

जीवन के प्रति अपनी संबद्धता का उन्होंने अनेक अवसरों पर उल्लेख किया है। एक जगह वह कहते हैं- 'मैंने कविता को जीवन से अलग नहीं रखा। इसलिए मैं अपने मस्तिष्क के एकाकी केंद्रों से कविता ले आने की फिकर में नहीं रहा। मैंने कविता को संसार की वस्तुवत्ता से पाया है और उससे आत्मपरकता स्थापित की है और उसी आत्मपरकता को संसार के सामने उसकी संप्रेषणीयता के लिए समर्पित भी किया है।' पहले संसार की वस्तुपरकता से जुड़ना फिर उसे संप्रेषणीय बनाकर रचना के रूप में पेश करना- इस प्रक्रिया



प्रगतिशील कविता के पंच महाभूत
शील, केदार, नागार्जुन, शमशेर तथा त्रिलोचन

फोटो : नरेंद्र पुंडरीक

में उन्होंने मस्तिष्क के एकाकी केंद्रों का निषेध किया है। मस्तिष्क के ऐसे ही एकाकी केंद्रों से निःसृत कविता को पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थक मान-मर्यादा देते हैं और कवि को इसी लालच में संसार से, जीवन से अलग करके नदी के द्वीप में बदल देना चाहते हैं।

उन्होंने कविता का उद्देश्य निर्धारित करते हुए लिखा है कि- 'मैं कविता को मानवीय चेतना की दिशा और दृष्टि देने वाली सक्षम इकाई मानता हूँ। इस इकाई के द्वारा ही यथार्थ और आदर्श की संगतियाँ और विसंगतियाँ निरूपित होकर आदमी को आदमी होने के

लिए प्रेरित करती हैं, ताकि वह समाज स्थापित हो सके जो शोषणविहीन हो, समता के आधार पर उत्तरोत्तर उन्नति करता रहे और विज्ञान प्रविधि की आज की उपलब्धियों को सब जनहिताय प्रयुक्त कर सके और सदा-सदा के लिए शांति की अवतारणा कर सके।'

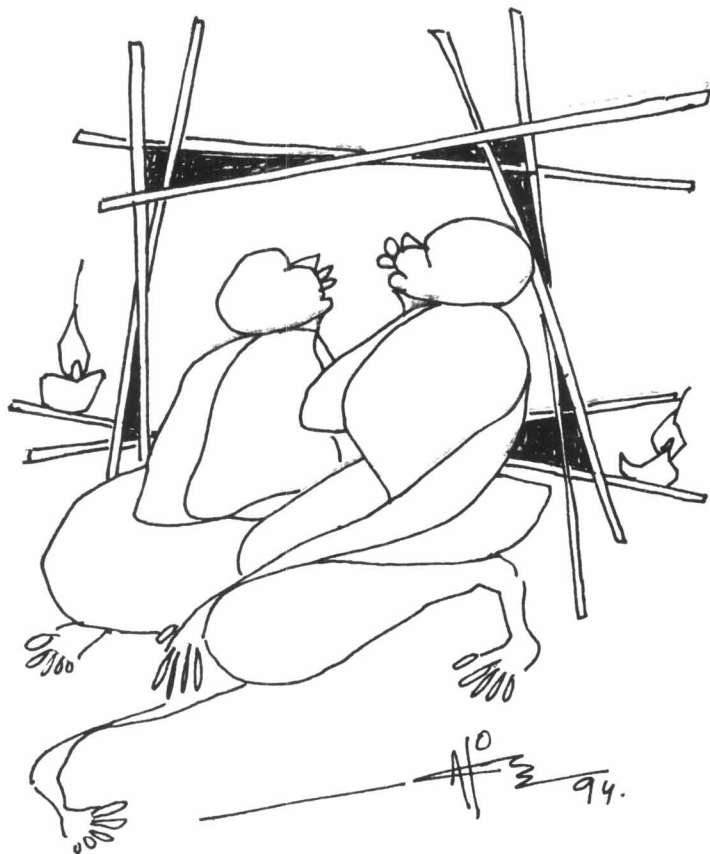
केदारनाथ अग्रवाल कविता में बौद्धिकता के प्रदर्शन के विरोधी हैं क्योंकि वह 'बहुत कम लोगों के पल्ले पड़ती है।' बौद्धिकता के आधार पर लिखी गई कविता को 'भारतीय काव्यलोक के बाहर की चीज बताते हुए उन्होंने कहा है कि ऐसी कविता 'संप्रेषणीय होने से वंचित रह जाती है।' इस तरह संप्रेषणीयता और शिल्प दोनों की सार्थकता के लिए उन्होंने समाज सापेक्ष होने की जरूरत पर बल दिया है। उनका यह निश्चित मत है कि 'संप्रेषणीयता को प्राप्त करना होता है।...बौद्धिकता भी तभी संप्रेषणीय होती है जब वह जन-जीवन से, उसके परिवेश से और उसके क्रिया-कलाप से और उसके मानवीय गुणों से संबद्ध होती है।' अगर ऐसा नहीं होता और बौद्धिकता का वैयक्तिक स्वरूप होता है तो रचना मूर्त न होकर अमूर्तन की ओर जाया करती है। इस तरह उन्होंने कविता के कथ्य और शिल्प को अलग-अलग नहीं, एक साथ जोड़कर देखा है, इन्हें 'अंतर्ग्रथित' बताया है। उदाहरण के लिए उन्होंने मुक्तिबोध को बौद्धिक विशिष्टता का कवि बताते हुए लिखा है कि 'उनके काव्य की बौद्धिक यंत्रणा की संप्रेषणीयता इसलिए गूढ़ हो गई क्योंकि वह आम आदमी की वैयक्तिकता से नहीं जुड़ सकी।' इसके विपरीत उन्होंने निराला की कविता 'कुकुरमुत्ता' को बौद्धिकता से भरपूर, सशक्त और संप्रेषणीय कलात्मक कविता माना है क्योंकि वह युगीन यथार्थ के सत्य को पकड़कर अनेकानेक बिंबों के माध्यम से इस तरह से साकार कर देती है कि कविता एक तरफ सपाटबयानी से बच निकलती है और दूसरी तरफ मानवीय मानसिकता को व्यापक गहराई के साथ ग्रहणीय बना देती है।'

इस तरह उन्होंने कविता की संप्रेषणीयता का सवाल उठाकर जिस तरह से उसका निराकरण किया है, उसका उद्देश्य आम आदमी तक कविता को पहुंचाना है- उस आम आदमी तक जो खुद 'आज के साहित्य का केंद्रबिंदु बन गया है।' □

नाँमिनी

‘अनाम’

रेखांकन : वीरेंद्र



“सर, आपके डिस्चार्ज पेपर्स वापस आ गए।” मैंने उन्हें जैसे सोते से जगाया।

एक वर्ष हो गया एम.डब्ल्यू.ओ. (मास्टर वारंट आफिसर) नंबूदरी को यहां पोस्टिंग पर आए। यह उनकी सुपरएन्युएशन पोस्टिंग थी। वायुसेना में सर्विस के अंतिम दो वर्षों में वायु सैनिकों को सेटलमेंट के लिए इच्छानुकूल पोस्टिंग मिल जाती है। इसी सुविधा का लाभ उठाकर नंबूदरी यहां आए थे। लेकिन उनके आने का प्रयोजन सफल होते नहीं दिखा मुझे। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि यह एक अच्छी पोस्टिंग थी। अलिस्टा (एविएशन इलैक्ट्रॉनिक्स इंस्पेक्शन स्पेसिफिकेशन एंड डाकुमेंटेशन ऑथरिटी) जहां वैज्ञानिकों द्वारा अनुसंधान कार्य चलता रहता है। वायुसैनिकों को वायुसेना तथा इस विभाग के बीच संपर्क बनाए रखने के लिए रखा गया है। बिल्कुल शांत वातावरण...न फौज का अनुशासन न भागदौड़ ...।

नंबूदरी का अपना मकान है जल्लाहल्ली, बंगलौर में, पर वह वहां न रहकर मैस में रहते थे। कार्यालय में आते ही कुर्सी पर बैठे-बैठे सोने लगते। उनकी पीड़ा को मैं जान नहीं सका। कई बार चाहा पर रैंक और उम्र के अंतर ने इसकी इजाजत नहीं दी। नौकरी से डिस्चार्ज होने से पूर्व कुछ आवश्यक कागजात रिकार्ड आफिस में भेजने होते हैं। आज वही पेपर्स वापस आ गए थे। पेपर्स भेजने के पूर्व मैंने उनसे कहा था...उसमें एक जगह पति-पत्नी की संयुक्त तस्वीर चिपकानी पड़ती है- जो उन्होंने नहीं चिपकाई थीं।

“व्हाई...व्हाट हैपेंड?” आंखें मलते हुए उन्होंने पूछा।

“सर ! ज्वाइंट फोटोग्राफ नहीं होने के कारण...”

“गिव मी।”

मैंने पेपर्स उन्हें दे दिए। उन्होंने एक क्षण उन्हें देखा। फिर टेबुल पर रखकर छत की तरफ देखने लगे। थोड़ी देर बाद पलकें बंद हो गईं।

“ब्लडी बिच!”...शायद पहली बार उनके होठों से मैंने किसी के लिए गाली सुनी थी।

“सर! आप मैडम के साथ ज्वाइंट फोटो क्यों नहीं निकलवा लेते...इसमें प्रोब्लम क्या है?”

उन्होंने पलकें खोलीं...एक बार मेरी ओर देखा...फिर कुछ सोचकर बोले- “यू नो, आई हैव ए हाउस हियर?”

“यस सर।”

“एंड यू नो, आई एम लिविंग इन मैस?”

“यस सर।”

“डू यू नो व्हाई?”

“नो सर।”

“यू विल कम टू नो टूमरो।”

सचमुच हैरानी की बात थी। अलिस्टा से उनका घर तीन किलोमीटर दूर था जबकि मैस आठ किलोमीटर। फिर भी वह मैस में रहते थे। उनकी पत्नी उन्हीं के घर में रहती थी। जीवित थी...उनमें तलाक भी नहीं हुआ था। मैं कुछ समझ नहीं सका।

अगले दिन उन्होंने अपने डिस्चार्ज पेपर्स मुझे वापस देते हुए कहा- “टाइप दिस एप्लीकेशन एंड डिस्पैच एलौग विद माई डिस्चार्ज पेपर्स!”

उनके आवेदन पत्र को मैंने ले लिया। बाहर चले गए वह। शायद नहीं चाहते थे कि उनके अतीत के पन्नों को कोई उनके सामने पलटे। नंगा व्यक्ति परदे की ओट खोजता है मगर उसे नंगा ही होना पड़े तो...! सचमुच कितना विवश है मनुष्य!

मैंने पेपर टाइपराइटर में लगाए... कार्बन लगाया और जुट गया अपने काम में-

महाशय,

मेरे डिस्चार्ज पेपर्स वापस आ गए- इस टिप्पणी के साथ कि उस पर मेरे नॉमिनी अर्थात् पत्नी के साथ मेरी संयुक्त तस्वीर नहीं चिपकाई गई है। मेरा ट्रेड क्लर्क है और न भी होता तो इसकी जानकारी सभी को है। पिछले पैंतीस वर्षों से मैंने यही काम किया है। न जाने कितने वायु सैनिकों के डिस्चार्ज पेपर्स फारवर्ड किए। मगर सब कुछ जानते हुए भी सिर्फ अपनी तस्वीर चिपकाकर भेजने का कुछ न कुछ कारण तो होगा ही। यद्यपि मैं नहीं चाहता था कि अपने नितांत व्यक्तिगत जीवन में किसी को झांकने का अवसर दूं। काश! ऐसा संभव हो पाता।...

“सुनील!” दरवाजा खोलकर वह अंदर आ चुके थे। बंगलौर के मौसम में पसीने की गुंजाइश कम है, पर वह पसीने से बुरी तरह तर-ब-तर थे। उनकी खीझ या गुस्सा...चेहरे पर स्पष्ट था।

“क्या बात है, सर!”

“टाइप कर रहे हो...अच्छा छोड़ो...अभी टाइप मत करो...एक बार और कोशिश कर लेता

हूं।”

“किस चीज के लिए, सर! मैं समझा नहीं?”

“एक काम करो...इन्हें यहीं छोड़कर मेरे साथ आओ। जरा घर चलना है।”

स्कूटर पर बैठकर हम चल पड़े।

उनका घर ज्यादा दूर तो था नहीं। मुश्किल से दस मिनट लगे होंगे। पहली बार उनके घर गया था। बड़ा अच्छा लगा। नंबूदरी साहब ने सचमुच इसके लिए बहुत परिश्रम किया होगा।

घर का दरवाजा अंदर से बंद था। उन्होंने कॉलबेल बजाई। दरवाजा खुला...खोलने वाला एक पुरुष था।

“गुडमॉर्निंग सर! प्लीज कम इन!” पुरुष ने कहा।

“आओ सुनील!” नंबूदरी साहब बोले।

हम अंदर आ गए। डाइंग रूम अच्छी तरह सजाया गया था। दीवारों पर हैंगिंग पेंटिंग और तस्वीरें थीं। धागे और लकड़ी की कई कलाकृतियां शोभायमान थीं। हम सोफे पर बैठ गए। पुरुष कमरे में चला गया।

थोड़ी देर बाद एक महिला उसी पुरुष के साथ आई। उसने गाउन पहन रखा था। चेहरे पर कुछ समय पूर्व मेकअप किया गया होगा... जो अब उतरने लगा था... भारी-भारी पलकें और थका-थका शरीर फिर भी चुस्त दिखने का स्वांग। वह मुस्कुराती हुई दूसरे सोफे पर बैठ गई उस पुरुष के साथ।

“कैसे आए?” महिला ने पूछा।

“मेरे डिस्चार्ज पेपर्स वापस आ गए हैं।”

“मैं क्या कर सकती हूँ?”

“अभी भी वक्त है- चलो, फोटो खिंचवाने ...वरना बाद में पछताना पड़ सकता है।”

“तुम मेरी चिंता छोड़ दो...जब पछताना होगा...पछता लूंगी! पर अभी यदि तुम्हें मेरे साथ फोटो खिंचवानी है तो मैंने जो शर्त रखी है, उसे पूरा करो...वरना...”

“तुम अच्छा नहीं कर रही हो! कहीं ऐसा न हो...!”

“मैं वही कर रही हूँ जो करना चाहिए !

तुम...!”

“फोटो खिंचवाने में तुम्हें क्या कष्ट है?”

इस बार पुरुष ने उससे पूछा।

“जोसफ! यू विल नाट कम इन बिट्वीन ओके...”

पुरुष चुप हो गया। दुबारा कुछ नहीं कहा उसने।

“आज तक वही होता रहा जो तुमने चाहा। अब तो...।”

“झूट बोल रहे हो तुम...कुछ समय पहले तक मैं वह सब कुछ करने को बाध्य थी जो तुम चाहते थे। मेरी इच्छा...मेरी मर्जी कुछ मायने नहीं रखती थी तुम्हारे लिए। पर अब...अब जबकि तुम बड़ी मुश्किल से मेरी मुट्ठी में आए हो... तुम्हें वही करना होगा... जो मैं चाहूंगी। अगर कीमत लाए हो तो मैं तैयार हूँ...वरना, दरवाजा खुला है।”

“सुनील! डिड यू गैट आन्सर?”

“सारी सर!” मैंने कहा।

“तुम उस बच्चे से क्या बातें कर रहे हो, बुढ़े! हिम्मत है तो मेरा जवाब सुनो। उसे क्या मालूम... क्या-क्या जुल्म किए हैं तुमने? तुमने मेरी कभी परवाह की? साथ में मैं रहती थी तुम्हारे सुबह छः बजे ड्यूटी जाना होता, मैं नाश्ता बनाती थी तुम्हारे लिए...दोपहर बाद दो-तीन बजे वापस आते तो तुम्हारे साथ लंच लेने के लिए मैं प्रतीक्षा किया करती थी...मगर कभी भी तुमने नहीं पूछा- मैं कैसी हूँ! हर समय अपने मां-बाप, भाई-बहन के लिए मरते रहे। पिताजी की तबीयत ठीक नहीं! मां बीमार है। भाई इंजीनियरिंग कर रहा है! बहन की शादी है!...सारी कमाई इसी में फूँक दी। कभी गलती से भी पूछा....इस बार दीवाली पर क्या लोगी? कल ओणम है- बोलो क्या चाहिए? मेरी उम्र की औरतें गहनों से लदी रहतीं.... इयररिंग..अंगूठी...सोने की चूड़ियां...चेन...कभी तुम्हें शौक हुआ...या इच्छा हुई कभी जानने की कि मां-बाप के अलावा तुम्हारी बीबी भी है? ...उसकी भी कुछ इच्छाएं हो सकती हैं? मेरा मन रखने के लिए कभी ऊपरी मन से आकर पूछते तो तसल्ली हो जाती ! मगर...मगर तुमसे वह भी नहीं बन पड़ा। और तो और तुम्हारे पास जो देने लायक था- जिसकी कोई कीमत नहीं जिसे लोग प्यार कहते हैं...मैं उसके लिए भी तरसती रही। गहने की भूख तो शायद औरत बर्दाश्त कर ले मगर तन की भूख...तुमने तो उसमें भी इतनी कंजूसी की कि....।

“चलो सुनील ।”

मुझमें भी वहां बैठने की हिम्मत नहीं थी।
बातों का रुख इस तरह बदल जाएगा... उनकी
रंजिश इतनी कटुता पैदा करेगी...मुझे भनक नहीं
थी अन्यथा वहां जाने की गलती नहीं करता।
उठकर चल पड़े हम।

रास्ते में वह एक शब्द भी नहीं बोले।
अलिस्टा के गेट पर मुझे छोड़कर वह मैस चले
गए। मेरी उपस्थिति में पत्नी द्वारा इस तरह के
व्यवहार की उम्मीद नहीं होगी शायद। पति-पत्नी
आपस में चाहे जितना झगड़ लें मगर किसी तीसरे
के समक्ष एक-दूसरे की प्रताड़ना किसी को सहन
नहीं होती... मगर वहां तो मिस्टर जोसफ भी थे!
...कौन हैं यह मिस्टर जोसफ उनकी अनुपस्थिति
में वहां रहने वाला...!

उनका वह आवेदन पत्र अभी भी टाइपराइटर
पर लगा हुआ था। एक गिलास पानी पीकर मैं पुनः
बैठ गया-

मेरा जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था,
जहां मां-बाप, भाई-बहन सभी एक-दूसरे के
सुख-दुख में बराबर के सहयोगी थे। कोई भी
चीज किसी एक की नहीं, बल्कि सभी का उस पर
समान अधिकार था। अपने-पराए की बू से दूर थे
हम। उस वातावरण में पलकर मुझ पर किसी
अन्य संस्कार का असर हो...यह कैसे संभव था!

मैट्रिक की परीक्षा पास कर मैंने एयरफोर्स
ज्वाइन कर ली। तब मेरी आयु सत्रह वर्ष से भी
कम थी। मां और पिताजी वृद्ध होते जा रहे थे। मेरा
छोटा भाई और छोटी बहन पढ़ रहे थे। धीरे-धीरे
परिवार की जिम्मेवारी मुझ पर आने लगी। वेतन
मिलते ही मैं उसे पिताजी के पास भेज देता। गांव
में थोड़ी-बहुत जो खेती थी, जमीन बंधक रखे जाने
के कारण बंद हो गई थी। पैसा जमा कर उसे
छुड़ाया। थोड़ी आमदनी बढ़ी...तब तक भाई कालेज
में आ चुका था।

आगे आने वाला समय इतना भयंकर
दिखता है कि व्यक्ति परेशान हो उठता है सिर्फ
सोच-सोचकर...कैसे कटेगा यह समय! पर बीता
हुआ समय इतनी तेजी से भागता है कि दस वर्ष
पुरानी घटना भी लगती है जैसे कल की बात हो।
जी हां, दस ही नहीं, बारह वर्ष बीत गए। भाई बी.
एससी. करने के बाद इंजीनियरिंग में एडमिशन ले
चुका था और बहन बी.ए. कर रही थी। मेरी उम्र
उनतीस के करीब रही होगी। तभी पिताजी ने मेरा

विवाह निश्चित कर दिया। यद्यपि परिवार के
भरण-पोषण को लेकर इतना चिंतित था कि विवाह
के विषय में कभी सोच नहीं सका। एक-दो बार
मना भी किया, पर पिताजी के आगे विवश था
और मेरी शादी हो गई।

शादी के लिए इतना लालायित एवं उत्सुक
क्यों होता है मनुष्य आज तक मैं समझ नहीं सका।
शादी मैंने इसलिए नहीं की कि मुझे राजी से प्यार
था या कामदेव की इतनी कृपा हो गई और
अनियंत्रित हो गया था मैं...बल्कि जीवन चक्र का
यह एक अनिवार्य कर्तव्य है और इसी कर्तव्य को
निभाया था मैंने। पति-पत्नी के बीच प्रेम का क्या
महत्व है... प्रेम होता क्या है... शायद आज भी
इन चीजों से अनभिज्ञ हूं। मैंने इसे हमेशा समझौते
के रूप में स्वीकार किया... उसी समझौते में मुझे
अपना कर्तव्य दिखाई पड़ता था...पर आज न वह
समझौता कायम रह सका न मेरा कर्तव्य...

मेरे भाई और बहन दोनों अध्ययनरत थे। उन्हें
पैसे की बहुत आवश्यकता थी। उस समय यदि
पत्नी को साथ लाता तो पैसा बचाना संभव नहीं था।
एयरफोर्स में परिवार रखना संभव था, मगर मकान!
मकान की समस्या तो हर जगह थी मकान के बदले
सरकार द्वारा दी गई रकम पर्याप्त नहीं होती अतः
वेतन से मकान का किराया देना पड़ता। यह मेरे
लिए असंभव तो नहीं, पर कठिन अवश्य था। उस
स्थिति में मेरे पास राजी को पिताजी के पास छोड़ने
के अलावा और कोई चारा नहीं था।

एक वायुसैनिक का वेतन कितना होता है?
क्या वह इतनी जिम्मेवारियों को ढो सकता है?
शायद नहीं। कठिनाई मुझे भी थी। हमेशा
भविष्यनिधि से कर्ज लेता रहा। जब छुट्टी लेकर
घर जाता तो राजी का तेवर...जैसे हर समय लड़ने
की मुद्रा में...

“तुम मेरा बोझ उठा नहीं सकते थे तो शादी
क्यों की... मैं नौकरानी हूँ या गुलाम जो तुम्हारे बूढ़े
मां-बाप को खाना बनाकर खिलाती रहूँ...! दिनभर
खांसता रहता है बुढ़ा...चारपाई पर ही मूत देता
है...गर्मी के मौसम में भी उसे नहाने को गर्म पानी
चाहिए! नहीं होगा मुझसे यह सब। ऊपर से
बुढ़िया...बुढ़िया ने इस बार मेरा गला काट लिया है।
शादी में जो हंसुली चढ़ी थी कुछ दिन पहले ले ली।
बोलती है...नहीं दूंगी यह तेरे बाप की या भरतार
की चीज नहीं है ! बुढ़िया को नरक में भी जगह
नहीं मिलेगी। कई बार उसे लेकर मायके गई हूं

चार तोले की हंसुली हल्दी की तरह पीला कितना
बढ़िया सोना है। आंखों से उसकी खूबसूरती नहीं
जाती...मगर बुढ़िया ने रख ली। मेरे मन में खोट
नहीं था, नहीं तो उसे बेच देती। हे भगवान! उस
बेईमान को कभी चैन मत देना औरत का शाप
खाली नहीं जाता! खासकर उसका, जिसका दिल
रो रहा हो। मेरा मन कलप रहा है। ईश्वर उसे
इसका फल अवश्य देगा। चाहे उसके बेटे पर पड़े
या बेटी-दामाद पर, लेकिन पड़ेगा जरूर और अब
...अब बुढ़िया देगी भी तो नहीं लूंगी। जब मरेगी
तो उसे बेचकर उसका क्रिया-कर्म कर देना। मैंने
कह भी दिया- यदि वह मेरे पास नहीं रही तो किसी
के पास नहीं रहेगी जिसको दोगी, उसका कुल
खानदान नष्ट हो जाएगा।”

इस औरत के साथ कैसा व्यवहार करूं,
समझ नहीं पाता। मैंने हर तरह से उसे शांत रखने
की कोशिश की। भाई की शादी हो गई, तब मैं राजी
को साथ में लेकर आ गया। छोटा भाई स्टेट सर्विस
में था अतः वह मां और पिताजी की देखभाल कर
लेता। इस बीच मैं एक पुत्र का पिता बन चुका था।
बच्चा स्कूल जाने लगा और ज्यों-ज्यों वह बड़ा
होने लगा, मैं स्वयं को छोटा महसूस करने लगा
था।

कई वर्ष साथ में रहते गुजर गए, परंतु राजी
ज्यों की त्यों बनी रहती। उसके स्वभाव में मिठास
की जगह कटुता भरती गई। मैंने उसे समझाने की
जितनी कोशिश की, उतनी ही वह दृढ़ी एवं उग्र
होती गई। व्यक्ति को समय के साथ बदलना
चाहिए, न कि अतीत को याद करके जीवन को
नारकीय बना लें। अच्छे और बुरे दिन सभी के जीवन
में आते हैं। अच्छे दिनों में भी बुरे दिनों को याद
करके आंसू बहाना...छाती पीट-पीटकर रोते रहना
और सगे-संबंधियों के साथ अपने-आप को कोसते
रहना कहां की अक्लमंदी है? मगर उसे कौन
समझाए? मेरे साथ रहते हुए भी कभी प्रसन्न नहीं
रही वह। जोधपुर...दिल्ली...बंगलौर...इलाहाबाद
कई जगह साथ-साथ घूमी, मगर सास-ससुर के
साथ व्यतीत किए हुए वक्त से बाहर वह कभी
नहीं आ सकी। मानो उन दिनों का कोई प्रेत उसकी
जेहन में प्रवेश कर गया हो...“कितना भी घुमा दो
मुझे...स्वर्ग में भी पहुंचा दो, मगर मैं उस बुढ़िया
का व्यवहार नहीं भूल पाती। जब पैसे की जरूरत
होती तो पुचकारकर बातें करती...बहू! दो रुपये दे
दो। एक काम है...पर जब चूड़ियां पहननी थीं तो
साफ मना कर दिया पैसे नहीं है, तुम दे दो। सुहाग

का व्रत था...बार-बार नहीं आता...पर कैसे मना कर दिया...मैं...मैं तो उसे मरने पर भी पानी नहीं दूंगी। और वह हंसुली...चार बार लेकर मायके गई थी। उसका पीलापन आंखों के आगे से नहीं हटता, तुम्हारी बुआ ने उसे शायद पढ़ा दिया...बोलती थी 'इसकी हंसुली कैसी...यह क्या जाने दादी को। तुमने मां की सेवा की है... इस पर तुम्हारा हक है।' और बुढ़िया आ गई बहकावे में। अगर मैं जानती कि बुढ़िया कलेजा निकाल लेगी तो उसे बेचकर कोई दूसरी चीज बनवा लेती। खैर, कोई बात नहीं मेरे तन से तो उतर ही गई किसी और के काम भी नहीं आएगी।"

औरतों को आभूषण से इतना लगाव क्यों है मैं आज तक नहीं समझ सका। आभूषण औरतों को घर की चारदीवारी में कैद करने की एक सोची-समझी चाल है पुरुषों की। पुरुष प्रधान समाज में नारी कभी शृंगार कक्ष से बाहर न आए, अतः उसे गहनों की बेड़ियों में उलझा दिया गया। कैदी को लोहे की मोटी जंजीर में जकड़ दिया जाता है, उससे मुक्त होने के लिए कितना तड़पता है वह! सदियों से स्त्रियां सोने, चांदी की पतली जंजीरों में स्वयं को जकड़कर भी प्रसन्न हैं...कभी भी उससे मुक्त होने का प्रयास नहीं करतीं...आखिर क्यों?

मेरी दादी के पास चांदी के ढेर सारे सिक्के और सोने की हंसुली थी। उस समय घर में मैं अकेला बच्चा था। उनकी सेवा-टहल में मैंने कभी कोई कमी नहीं की। वह भी बहुत प्यार करती थीं। मुझे याद है...अक्सर वह मां से कहती, "यदि मैं जीवित रही तो शिवम् की पत्नी का मुंह इस हंसुली से देखूंगी और अगर मर गई तो तुम उसे मेरी ओर से भेंट दे देना।" दादी की मृत्यु मेरी शादी से पहले हो गई थी। दादी के वचनानुसार मां ने वह हंसुली राजी को दी तो अवश्य मगर कुछ समय बाद... शायद पांच-छह वर्ष बाद वापस भी ले ली। राजी इस सदमे से बाहर नहीं आ पा रही थी। वह बार-बार मुझे मां से बात करने के लिए उकसाती। जेवरात मेरे लिए कभी भी महत्वपूर्ण नहीं रहे। सच तो यह है कि धन या सोने के प्रति मेरे मन में आकर्षण उत्पन्न हुआ ही नहीं और यदि होता भी तो शायद मां से इस संदर्भ में मैं चर्चा नहीं कर पाता।

हम भारतीय बहुत इतराते हैं अपनी संस्कृति पर...खासकर दंपत्य जीवन के संबंधों को लेकर। पश्चिम में शादी और तलाक आम बात है। आज विवाह और कल विच्छेद वहां खबरें नहीं होंतीं, पर

यहां बहुत बड़ी घटना बन जाती हैं। लोगों की जुबान पर चर्चा के केंद्र में बहुत दिनों तक रहती हैं ऐसी घटनाएं। उस स्त्री और पुरुष का नाम लोग भूल नहीं पाते...यहां तक कि उस परिवार के अन्य लड़के-लड़कियों के भविष्य पर भी इसका कुप्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। पर क्यों छत्तीस की तरह संबंधों के बावजूद पति-पत्नी एक छत के नीचे नदी के दो तटों की भांति जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हों...क्यों किस सुख की आशा में! कब तक वे सूर्योदय की प्रतीक्षा करते रहें? क्यों किसी अन्य की खातिर स्वयं को तिल-तिल मारते रहें...जो स्वयं अपना वर्तमान नहीं सुधार पा रहे..जला रहे हैं अपना वर्तमान और भविष्य दोनों। इसलिए कि इनके जीवन का असर अन्य के भविष्य पर न पड़े...जैसे उस 'अन्य' के भविष्य की गारंटी जुड़ी है इनसे !

"सर! एक आदमी आपसे मिलना चाहता है।" चपरासी आकर बोला।

"बुलाओ!" कुछ समय के लिए मैंने काम रोक दिया।

थोड़ी देर बाद एक व्यक्ति उसके साथ आया। चेहरे पर थकावट, पर अधरों पर मुस्कान।

"यस सर।" मैंने कहा।

"आर यू सुनील?"

"जी हां।"

"आई एम राजेंद्रन सन आफ एम.डब्ल्यू.ओ. नंबूदरी।"

"प्लीज सिट डाउन!" मैंने कहा।

उसके बैठने के बाद पूछा- "किसलिए आए...कुछ विशेष काम?"

"जी हां, मेरे फादर और मदर दोनों के संबंधों को जानते हैं आप। मम्मी उनके साथ फोटो खिंचवाने के लिए तैयार नहीं। इस स्थिति में क्या यह संभव नहीं कि पापा मुझे अपना नॉमिनी बनाएं?"

"आप अपने पापा से बात कीजिए।"

"पापा राजी नहीं हो रहे। उनका दिमाग खराब हो गया है। आपके साथ अच्छे संबंध हैं उनके। आप उन्हें समझाइए। नौकरी छोड़ने के बाद कहां जाएंगे वह!...आखिर मेरे साथ ही रहना होगा। संभव है, उनकी संपत्ति हड़पने के लिए कोई हमदर्दी का नाटक करके उनके निकट आने का प्रयास करे। मगर नाटक आखिर नाटक ही होता है,

ज्यादा समय तक नहीं चलता। पैसा समाप्त होते ही वह उन्हें घर से निकालकर सड़क पर खड़ा कर देगा और पापा दर-दर की ठोकरीं खाने पर मजबूर हो जाएंगे। तब या तो उन्हें वृद्धाश्रम की तलाश करनी पड़ेगी या वहीं पागलों की तरह मर-खप जाएंगे। अतः मैं अगाह कर रहा हूँ...कोई भी स्टैप सोच-समझकर लें।"

जिस तरह आया था उसी तरह वह चला भी गया और मैं... मैं अजीब उलझन में फंस गया। यद्यपि समस्याएं मेरी नहीं थीं, पर नंबूदरी साहब की उलझनों के साथ कहीं न कहीं मैं स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस कर रहा था। एक फौजी... भटकता रहा जीवनभर बंजरों की तरह...पैंतीस-छत्तीस वर्षों तक सिर्फ एक ही उम्मीद के सहारे...रिटायरमेंट के बाद शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करेंगे! जमीन खरीदी... मकान बनवाया ... बच्चा बड़ा होकर अपने पैरों पर खड़ा हो गया ...पर क्या मिला उन्हें? सर्विस में रहते हुए स्थायी न सही, पर अपना मैस तो है...पर रिटायरमेंट के बाद उनके पास क्या रहेगा?... न घर... न पत्नी... न बच्चे...!

उस दिन रात-भर सो नहीं सका! आज नौकरी में हूँ, कल मुझे भी सेवानिवृत्त होना है! आज यह समस्या नंबूदरी साहब के साथ है कल यही प्रश्न मेरे आगे खड़ा हुआ तो! कहां जा रहा है हमारा समाज, हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता, हमारी नई युवा पीढ़ी...हमारा संस्कार! लगता है, सब कुछ समाप्त हो गया!...जो पहचान थी इस देश की मिट गई! क्यों हो रहा है ऐसा...कौन है दोषी? स्वतंत्रता के बाद आधुनिकता की खोज में कुछ है जिसे हम खोते जा रहे हैं! स्त्री अबला हो और पुरुष सबल ऐसा नहीं चाहा था! हमने आधुनिकता की धुन में शायद पाने से अधिक हम खो रहे हैं और वह 'कुछ' ऐसा है जिसे पुनः वापस प्राप्त करना है।

अगले दिन पुनः उनका आवेदन पत्र टाइप करने लगा। न जाने क्यों डर लगने लगा था मुझे...कहीं कुछ गलत तो नहीं हो रहा है...नंबूदरी साहब आवेग में आ...।

जीवन के किस मोड़ पर कहाँ, कैसे, क्या घटित हो जाए...कैसे पता! ऐसा ही तो हुआ मेरे साथ। एक पुत्र है राजेंद्रन...बड़ा होकर नौकरी करने लगा। किस तरह लालन-पालन हुआ उसका...कैसे बताऊँ? मां-बाप के झगड़े के बीच पलता हुआ...उनके झगड़ों के साथ बढ़ता हुआ, उनकी नफरतों के बीच टूटता हुआ। यद्यपि मैंने हमेशा

प्रयास किया कि उसके बालपन या किशोरावस्था पर हमारे रिश्तों का असर न पड़े, पर काश! ऐसा संभव हो पाता !

राजेंद्रन हमसे अलग रहने लगा। कारण नौकरी थी। उसी समय मेरा तबादला शिलांग पूर्वी वायु कमान मुख्यालय में हो गया।

शिलांग का वातावरण... मेघालय... 'मेघों का घर' नाम ऐसे ही नहीं पड़ा है। गोहाटी से शिलांग तक और न जाने दूर-दूर कहां तक... पहाड़ ही पहाड़... चारों तरफ झरने... शाल, बांस और देवदार के वृक्ष...। राजी के साथ एक दिन शिलांग व्यू पॉइंट देखने गया था जो 'शिलांग पीक' पर स्थित है। वहीं पहली बार मुलाकात हुई थी जोसफ के साथ। वह भी केरल का था और हमें मलयालम में बातचीत करते सुनकर पहले उसी ने पूछा था— "आर यू फ्रॉम केरला?" देश से दूर परदेश में अपनी भाषा के व्यक्ति के मिलने पर जिस प्रसन्नता और अपनेपन की अनुभूति होती है...वही हमें भी हुई। मगर वह अनुभूति जीवन में इस तरह जहर घोल देगी, किसे पता था... !

जोसफ वहां अस्थाई कार्य से आया था। राजी ने उसे उसी शाम घर पर आमंत्रित किया। उसके बाद वह रोज ही आने लगा। इतना शीघ्र घुल-मिल जाएगा... इसकी उम्मीद नहीं थी। परिवार का सदस्य बन गया वह। उसके बिना शाम को एक खालीपन का अहसास होता। उसके व्यक्तित्व में कुछ था जिसने मेरे जैसे व्यक्ति को भी आत्मसात कर लिया था।

"सर, आपने चेरापूँजी देखी?"

"यह न खुद देखेंगे न मुझे देखने देंगे!" राजी बोली थी, "जब कहती हूँ तो इनका एक ही जवाब है— मैं यहां पहाड़ियों, ऊंची-नीची सड़कों ... पथरीली सीढ़ियों पर चढ़ते-उतरते थक जाता हूँ। चेरापूँजी जाकर बारिश में घूमने और पहाड़ियों पर भटकने की शक्ति मुझमें नहीं है। मैं बोर हो गई हूँ इनके साथ!"

"क्यों सर! इतनी खूबसूरत जगह है... कहां-कहां से आते हैं लोग इसे देखने...और यहां रहकर भी आप...।"

"मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं और उम्र भी बढ़ती जा रही है, ठंड सहन नहीं कर पाता। वहां जाना नहीं भाई, मेरे वश की बात नहीं!"

"मगर मैडम तो जा सकती हैं, इन्हें परमिट

कर दीजिए।"

"मैंने कब रोका है...यदि कोई जा रहा हो तो चली जाएं।"

"मैं टी.डी. पर आया हूँ यहां...दो-चार दिनों बाद चला जाऊंगा। चेरापूँजी जाने के लिए मैं भी कंपनी खोज रहा था। यदि मैडम आना चाहें तो मेरे साथ आ सकती हैं। मैं परसों जा रहा हूँ।"

काफी दिनों बाद पता चला कि यह उनकी चाल थी। उन्होंने पहले ही बस में सीट बुक करा ली थी। सिर्फ शिष्टाचार निभाया गया। एक दिन राजी की डायरी मेरे हाथ लग गई। और उसे पढ़कर बहुत सारे रहस्यों का पता चला। जोसफ कमांड स्तर का क्रिकेट प्लेयर था अतः उसका अधिकांश समय शिलांग में ही व्यतीत होता। फुर्सत के समय वह मेरे घर में ही पड़ा रहता...चूँकि उम्र में वह काफी छोटा था, अतः मेरे मन में कोई संदेह नहीं था, मगर...।

राजी की डायरी से जोसफ के साथ व्यतीत किए कुछ अंतरंग क्षणों के अंश देखने लायक हैं—

4 सितंबर 97

आज उनकी 'अर्दली अफसर' की ड्यूटी थी। घर में मैं अकेली बोर हो रही थी। केबल टी.वी. के सहारे कब तक समय काटती...सुबह से ही आकाश गर्म...बिजली चमकती...बादल गरजते और रह-रहकर वर्षा की बौछारें... धुएँ-सी घटाएं कभी-कभी खिड़की के रास्ते कमरे में प्रवेश कर जातीं...। आज शरीर की स्थिति ऐसी क्यों...मन के किसी कोने में कुछ अजीब सिहरन...चालीस पार कर गई हूँ फिर भी...उम्र के साथ सेक्स की फीलिंग कम होनी चाहिए पर...क्यों हो रहा था ऐसा...। तभी कॉलबेल बजी। जोसफ था। मेरे बेडरूम में बेरोक-टोक प्रवेश कर जाता था वह। पर आज नहीं चाहती थी कि वह यहां आए, जब मैं अकेली थी। पता नहीं, क्यों डर लगने लगा था।"

"साहब नहीं है क्या?" उसने पूछा।

"आज उनकी ड्यूटी है।"

"फिर अकेली क्यों बैठी हैं...चलिए एलिफेंटा फाल देखने चलते हैं।"

"ऐसे मौसम में!"

"मैडम। यह शिलांग है...राजस्थान नहीं! यहां आकाश में बादल कब नहीं रहते...किस समय वर्षा नहीं होती...जब तक यहां हैं...इस मौसम का

आनंद लीजिए...कुछ समय बाद... जैसा देश वैसी स्थिति...।"

जाना नहीं चाहती थी मैं, पर उसके व्यक्तित्व में न जाने कैसी सम्मोहन शक्ति थी...तैयार होकर उसके साथ चल पड़ी। मैंने छतरी लेनी चाही... उसके मना करने पर वह भी नहीं ली। "मैडम! इस बरसात में भीगने का भी अपना एंज्वायमेंट है ...छोड़िए छतरी...।"

अभी वर्षा नहीं हो रही थी। एलिफेंटा फाल यहां से एक किलोमीटर दूर था। वहां पहुंचते ही बारिश शुरू हो गई। पहाड़ियों पर देवदार के पौधे ...मगर इनकी हरियाली और शिमला के देवदार की हरियाली में मैंने फर्क महसूस किया...लगातार वर्षा की मार के कारण इनका रंग काई जैसा गहरा हरा, घाटी में कोहरे-सी धुंध, ऊपर पहाड़ी पर बादल मानो टहल रहे हों...इन नजारों को आंखों में समेटती हुई सीढ़ियां उतरने लगी।

बारिश अब तेज हो गई थी...कुछ लोग लौट रहे थे...शायद भीगने के डर से...उनके हाथों में छतरियां थीं। घटाएं गहरी होती जा रही थीं और वहां अंधकार...मैं लौटना चाहती थी, मगर जानती थी, जोसफ का तर्क लौटने नहीं देगा, अतः चुपचाप उसके साथ बढ़ती रही। घाटी में बने पुल पर खड़े होकर वहां के नजारों को देखती रही...झरने के रूप में गिरते पानी का शोर...सचमुच मनमोहक दृश्य था। वहां से नीचे उतरना था— अगले फाल को देखने! मगर बारिश की रफ्तार बढ़ने लगी फिर भी तेजी से नीचे उतरे। वहां चट्टानें कुछ इस तरह कटी हैं कि उसके नीचे खड़े होकर वर्षा से बचा जा सकता है। हम दोनों वहीं खड़े होकर वर्षा के बंद होने की प्रतीक्षा करने लगे...मगर वह कम होने की बजाय बढ़ती ही जा रही थी। कुछ समय बाद फाल का पानी— थोड़ी देर पूर्व जो बिल्कुल स्वच्छ था— गंदा दिखाई देने लगा, साथ ही उसकी धारा काफी तेज हो गई। जहां हम खड़े थे उससे थोड़ा ऊपर एक बड़ा पत्थर था...अब पानी उससे टकराकर फिर उछलकर गिर रहा था जिससे फाल का स्वाभाविक रूप उग्र हो गया ! नीचे घाटी में जहां पानी गिरता...वह स्थान चौड़ा है...मगर वहां से पानी के निकास का मार्ग संकरा है। तेज वर्षा के कारण पानी अधिक मात्रा में गिर रहा था। मगर पूरा पानी निकल नहीं पा रहा था, फलतः उस जगह पानी का स्तर बढ़ने लगा। मुझे न जाने क्यों डर लगने लगा था। साढ़े पांच बज गए...अंधकार

बढ़ता ही जा रहा था जहाँ पानी गिर रहा था, वहाँ से धुंआ उठने लगा। मेरा ध्यान नीचे गया...पानी हमसे तीन स्टेप्स नीचे पहुँच गया था। तभी अचानक जोर से बादल गरजने लगे...मानो पहाड़ टूटकर गिर रहे हों ! बजलियाँ चमकने लगीं और एक अजीब दृश्य उपस्थित हो गया, जिसे शब्दों में बांधना मेरे लिए ! डरकर मैं कब जोसफ के सीने में समा गई, इसका ज्ञान नहीं था ! आभास तब हुआ जब स्वयं को मिटाकर भी तृप्त महसूस करने लगी थी।

10 सितंबर 97

आज जोसफ के साथ मैं चेरापूँजी गई। नंबूदरी से अनुमति ले ली थी। उसने अनुमति कैसे दी, नहीं जानती! क्या सचुच उसका मन राजी हुआ होगा... मर्द स्वभाव से ही शक्की होते हैं, तो क्या उसे भी संदेह है ? क्या वह जानता था कि उसके मना करने पर भी नहीं मानती मैं... या कारण चाहे जो भी हो...मैं ट्रिस्ट कोच में पर्वतीय राहों और छटाओं का आनंद लेते हुए बगल में बैठे जोसफ के कंधे पर सर रखकर जीवन के एक विशेष सुख का अनुभव कर रही थी। वह नहीं मिलता तो शायद वंचित ही रह जाती इन सबसे। स्वस्थ कसरती बदन का आनंद ... ओह! अपने से बारह वर्ष बड़े पुरुष के साथ कैसे संभव था! डायना भागती रही जीवन भर इसी आनंद की खातिर...। उसने अच्छा नहीं किया...राजघराने की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए थी उसे... राजकुमार चार्ल्स पुरुष हैं...यदि उनका संबंध किसी गैर महिला से है तो राजघराने की शान के अनुकूल है, मगर डायना स्त्री है...उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था। वाह रे पुरुष समाज! किसी देश, समाज या परिवार की मर्यादा का ठेका नारियों ने ही ले रखा है- आप सब कुछ कर सकते हैं...मर्यादा भंग कर सकते हैं...बिस्तर पर रोज एक नई नारी का उपभोग कर सकते हैं ! डायना! तूने बहुत अच्छा किया... नारी जाति के लिए तूने एक आदर्श की स्थापना की...तुझे मेरा शत-शत नमन...! चार्ल्स का संबंध अन्य महिलाओं से था शायद डायना ने इसी का बदला लिया, मगर नंबूदरी का संबंध किस स्त्री के साथ था! मैं जानती हूँ, वह आदर्श पुरुष है पर यह उसकी विवशता भी हो सकती है। परिवार के बोझ को आजीवन गंधे की भाँति ढोता रहा। उसके पास न तो समय था, न शक्ति। वह मुझे...अपनी पत्नी को तो तृप्त कर नहीं सका, किसी अन्य के साथ क्या संबंध स्थापित करता!

मैं यहाँ नंबूदरी की तुलना चार्ल्स से नहीं कर रही कहां राजा भोज और कहां....मगर अतृप्त मैं भी उतनी ही थी जितनी डायना, अतः तराजू के दूसरे पलड़े पर चाहे नंबूदरी हो या चार्ल्स...कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि दोनों पुरुष जाति से हैं और तराजू के पहले पलड़े पर बैठी है नारी जाति की एक सदस्या...वह चाहे डायना हो या मैं...। तो मैं चल पड़ी डायना की राहों पर...चेरापूँजी जाने का मेरा मकसद यह नहीं था कि वहाँ जाकर पहाड़ के शिखर से बंगलादेश को देखूँ या उस चट्टान को, जिसे किसी जादूगर ने हवा में तैरते हुए छोड़ दिया है या वहाँ की गुफाओं में भ्रमण करूँ। मैं गई थी दिन-भर बारिश में भीगकर रातभर जोसफ की गर्मी से सूखने के लिए और मेरा यह अभियान इस रूप में पूर्णतः सफल रहा। दो दिन के लिए गई थी और दो सप्ताह कैसे बीते, पता ही नहीं चला...।

चेरापूँजी से लौटने के बाद राजी के व्यवहार में एक अजीब परिवर्तन देखा मैंने। उसके होठों से कड़वाहट गायब थी ! पहले जो अक्सर चारपाई देर से छोड़ती....अब प्रातः मेरे साथ उठती और घर का हर काम समय से सुचारु रूप से करती। दो सप्ताह जोसफ के साथ व्यतीत किए, पर मैंने कुछ नहीं कहा....शायद इसका असर है..यह मेरा सोचना था। मगर कितना मूर्ख था मैं झूठे भ्रम में इतराता रहा...ज्ञान की कोई उम्र नहीं होती। जब होश आए, वही वक्त सुनहरा है हमारे लिए। स्वप्न टूट गया...भ्रम मिट गया और....।

उस दिन तबियत ठीक नहीं होने के कारण समय से पूर्व लौट आया था। तबियत खराब होना, ड्यूटी से शीघ्र लौटने का कारण नहीं बनता, इसके लिए सिक रिपोर्ट करनी पड़ती है। मेरी पोस्टिंग आलिस्टा बंगलौर हो गई थी। मैं उसी खुशी की सूचना शीघ्र देना चाहता था राजी को। यों तो पुरुषों के घर से बाहर जाते ही स्त्रियाँ दरवाजा बंद कर लेती हैं मगर उस दिन राजी शायद जल्दी या अनजाने में दरवाजा बंद करना भूल गई थी। किवाड़ खोलकर मैं अंदर घुस आया। मेरे कान में एक अनोखा स्वर सुनाई पड़ा...ऐसी आवाज तो...बैडरूम खुला था...धोरे से झाँककर देखा लौटकर दूसरे कमरे की चारपाई पर लेट गया... इतना बड़ा धोखा...जिसे मैं अपनी अद्विगिनी मानता रहा...जिसकी खुशी के लिए सब कुछ न्यौछावर करने को प्रस्तुत...जिस पर कभी अविश्वास नहीं किया मैंने...आज वही...इच्छा हो

रही थी पंखे से लटक जाऊँ... पहाड़ से कूदकर, गोली मारकर ...जहर खा लूँ! क्या फायदा इस जीवन से...हे धरती माँ! तू ले ले मुझे अपनी गोद में...अब जीने की इच्छा शेष नहीं रहती...। लगता था...सिर की नसें फट जाएंगी...आँखें गीली हो गईं! फूटकर रोने की इच्छा हो रही थी...मगर न जाने क्यों आवाज बाहर नहीं निकली...उस क्षण मुझ पर क्या बीती...शायद व्यक्त करना...यह अवसादछल...भ्रम...कैसे बदरित कर गया...मैं स्वयं समझ नहीं पा रहा हूँ...।

कुछ समय पश्चात् राजी जोसफ सहित मेरे पास आई। सामने कुर्सी पर बैठ गए दोनों। थोड़ी देर के लिए सन्नाटा...। मैंने करवट बदल ली थी। उनसे नजर मिलाने की शक्ति मुझमें नहीं थी। ऐसा लगता, जैसे कोई बड़ा अपराध हो गया हो मुझसे अंदर ही अंदर घुट रहा था ...गाली दूँ...मारूँ...घर से निकाल दूँ इसे...मेरे ही घर में मेरे साथ... मैं जिंदा हूँ, फिर भी किसी अन्य के साथ...तू औरत है या...छिःपर प्रकट में एक शब्द भी नहीं निकल सका ! मुंह से ! न जाने क्यों स्वयं को ही कोसता रहा....अवश्य कहीं त्रुटि हो गई है...शायद मैं उसे उतना प्यार न दे सका, जितनी उसे अपेक्षा थी! अपने परिवार, मां-बाप, भाई-बहन के चक्रव्यूह से बाहर नहीं निकल सका! संभवतः उसी का परिणाम है...पर जो व्यक्ति अपने मां-बाप की उपेक्षा करता है...क्या वह अपनी पत्नी...अपनी संतान के प्रति समर्पित हो सकता है...जिस समर्पण की नींव ही कमजोर हो उस समर्पण...।

“एस.वी.!” (जब कभी अधिक स्नेह होता तो मेरे इनिशियल का प्रयोग करती वह)– “मैं नहीं चाहती थी कि सच्चाई इतनी जल्दी प्रकट हो, पर हो गई, अच्छा ही हुआ। कब तक छिपकर जोसफ से मिलती या मिलने का बहाना बनाती। मैं अच्छी हूँ या बुरी...तुम्हारी पत्नी हूँ- दुनिया की नजर में। अब तुम्हारे सामने दो विकल्प हैं। यदि चाहते हो कि तुम्हारी पत्नी बनी रहूँ...यानी हमारे बीच का रिश्ता पूर्ववत् बरकरार रहे तो तुम्हें मेरे और जोसफ के संबंध को स्वीकार करना होगा, अन्यथा मैं तलाक के लिए तैयार हूँ। इस स्थिति में बंगलौर वाले मकान से तुम्हें हाथ धोना पड़ेगा क्योंकि वह मेरे नाम है। फैसला तुम्हारे हाथ है।”

मुझे चुप देखकर उसने पुनः कहना जारी रखा- “देखो! रोने से क्या लाभ... यह हम स्त्रियों का

पृष्ठ 48 पर जारी

शब्द घर

शब्द के अर्थ सारे

पुराने पड़े

कुछ नया सोच तू

आज के शब्द घर !

जिंदगी बेखबर हो गई इस तरह-

मौत उसके लिए रोज का खेल है,

आदमी आदमी में बढ़े फासले,

बुद्धि का अब हृदय से कहां मेल है?

सत्य के रूप कुंठित,

ठगे-से खड़े,

अब नई गूंज दे,

सत्य के पक्षधर !

भीड़ में खो गए रास्ते इस तरह

दीखतीं हर तरफ मंजिलें मंजिलें,

आंधियों में बिके गंध के दूत सब-

फूल बनकर खिलें तो कहां हम खिलें?

हैं हरे पेड़ सब,

लोह जैसे कड़े,

आज बिजली गिरा-

व्योम से वारिधर !

दूर तक है अंधेरा नहीं रोशनी,

स्वप्न आए,

मगर अश्रु ने धो दिए,

सोचते थे अमृतफल मिलेगा मधुर

बीज विष के मगर-

पेट ने बो दिए;

सिर-कटी देह से,

सब परस्पर लड़े,

एक जीवन नया-

फूंक दे प्राण धर !

चलो चलें

सांसों में धुलने लगा जहर,

विपरीत हवाओं का

चलो चलें

कोलाहल से दूर, पेड़ की छांह तले !

अमृत कलश छलका न यहां,

अब तलक सिंधु मंथन से

आंधी उतरी नहीं अभी तक-

जड़ीभूत चंदन से,

मन-मन में रमने लगा विषय-

संदेह व्यथाओं का,

चलो चलें,

छलिया-मन से दूर, जहां यह प्यार पले !

मिट गया नाम रातों का-

पर अंधियारा नहीं गया,

रात चांदनी कहां गई,

कहां सवेरा गया नया?

मधुवन पर झरने लगी अगन-

नम से इस फागुन में

चलो चलें

अस्ताचल से दूर, न सूरज जहां ढले !

मंगल-ग्रह के लालच में

यह मंगल खो गया कहीं

संघर्ष नहीं

क्रांति नहीं,

शांति नहीं, जिंदगी नहीं,

आंगन में जुड़ने लगी भीड़-

परमाणु-परिदों की,

चलो चलें

जगमग पथ से दूर

गांव से मिलें गले !

आंख में कांटा

विना जाते किसी भी राह पर चलना

समय की आंख में

कांटा चुभोना है !

सत्य है यह,

सब अजाने राह चलते,

बाद में सच यह है कि सारे हाथ मलते,

हैं सभी कायर इसे मानो न मानो,

हम परस्पर दूसरे का सत्य छलते,

बैठकर तट पर बनाते योजनाएं,

सही तैराक को-

कैसे डुबोना है !

हर किसी के फैसले को मान जाते

ढेर पर भी कीचड़ी तंबू तान आते,

गालियों से गोद लेते आत्म-गौरव,

होट पर मुस्कान लेकर गान गाते,

चेहरे पर कुछ मुखौटों को लगाते,

फिर-अंध कहते-

रूप यह सलौना है !

विवश सज्जन भाग्य को ही दोष देता,

है 'अबूझा कर्मफल' संतोष लेता

कौन आंसू तृप्ति देगा- यह अजाना,

एक दुर्बल मन, हृदय को रोष देता

एक आदत को बदल, उम्मीद करना,

अगीले रेत में-

आंचल भिगोना है !

कौन चल पाया नहीं,

इसको भुला दो,

छोड़ आए भूल से-

उसको बुला लो,

इस मोड़ पर जो अचेतन-सा पड़ा है,

थक गया है, गोद में अपनी सुला लो,

धूल में लिपटा हुआ यह फूल ही है,

सब प्रकट-

यह न जादू या कि टोना है !

कैंसर

माई दुखी थीं
इस कारण नहीं कि...
कैंसर से जर्जर दुखता था उनका शरीर
कहीं-न-कहीं दुखती थीं
शाश्वत-सी घर की समस्याएं,
जिनमें...कुछ छोटी थीं
कुछ बड़ी थीं
छोटी में दैनंदिन की समस्याएं और
बड़ी में बेटों की पढ़ाई और बेटियों की शादी थी, और
साथ में बूढ़े होते पिता की छोटी-सी कमाई थी
कैंसर की पीड़ा से घिरी वे....
वास्तव में घर की समस्याओं से घिरी थीं
इसलिए नहीं कि भवितव्य क्या होगा?
इसलिए कि वर्तमान से दुखी
उस अनागत को देख रही थीं वे, जिसके लिए
सांत्वना की भाषा चुक गई थी
उनके लिए
जैसे चुक जाता है इलाज कैंसर से !

बहन

तुम्हें याद है
कितने दिन हो गए मिले तुमसे
सुदूर तुमसे मिलने आया था जब
अपने जीवन की असुविधाओं और आवश्यकताओं से
अवगत कराया था तुमने
जिसमें 'बहुत कुछ' था
'दूसरे के यहां विवश हो तुम्हें रहना था', और
'कपड़ा भी नहीं था'
असुविधाओं पर खामोश था मैं
आवश्यकताओं पर सांत्वना के शब्द भर थे मेरे
पर जब-जब सोचता हूं तुम्हारे बारे में
याद आता है तुम्हारा वह वाक्य...
'तुम्हारे लिए है मेरे लिए नहीं'
दुखता है अपनी पूरी पीड़ा में
आज जब कि

तुम्हारी शादी की तैयारी में व्यस्त
विभिन्न रंग-बिरंगे कपड़ों को सहेजता हूं तुम्हारे लिए
मुझे अपने कपड़ों के बारे में कोई चिंता नहीं है
उन्हीं दिनों के कपड़ों में मैं हूं तुम्हारे सामने
तुम्हें दिखाने के लिए नहीं
स्वयं के पीड़ित मन को शांति देने और
तुम में अपनी खुशी तलाशने के लिए
तुम्हें विदा कर चुका हूं
तमाम असुविधाओं, सीमाओं और पूरी न हुई इच्छाओं के साथ
चाह पूरी न कर पाने की विवशता
पीड़ा और व्यथा को
अब अच्छी तरह समझने लगी हो तुम, और
उन संघर्षों को भी ... जिनमें हम तुम और सभी शामिल हैं।
तुम्हें याद है
अभावों में कराहते हुए दादाजी, और
खांस-खांसकर दादी मां का दम तोड़ना
तुम्हें याद है
भाई के शोक में डूबे हुए बाबूजी की अकाल मृत्यु कैसे हुई थी?
तुम्हें याद है जब इन्हीं संघर्षों में छोड़ हम लोगों को
चल बसे थे वे
तब तुम कितनी छोटी थी?

शांति

शांति नहीं तोड़ती जड़ता
जड़ता तोड़ती है अशांति, और
अशांति के ही मध्य खोजता है व्यक्ति
अपनी अशांति के कारण, और
अशांति के ही मध्य पैदा होता है कोई हिटलर, जो
गोलियों, बमों और टैंकों के हवाले कर देता है....
व्यक्ति की शांति और स्वतंत्रता को, क्योंकि
शांति से होती है उसे नफरत, और
स्वयं के सिवा स्वतंत्र वह नहीं मानता किसी और को, लेकिन
उसकी आत्महत्या यह ध्वनित करती है
कि शांति और स्वतंत्रता को नहीं है कोई खतरा, क्योंकि
जब भी पैदा होता है इनसे कोई खतरा,
तो हिटलर मार दिया जाता है,
या फिर वह कर लेता है आत्महत्या !

राधिके !

नाच राधिके !
नाच
कि थिरक उठे यह मंच
और मन हमारे !
मंच के चारों कोने को तहकर
उछाल दे आसमान की ओर
और आसमान को खींचकर नीचे
उस पर नाच
हमें पता है
कई निगाहें
लहरों-सी लहरती तेरी बांह पर नहीं
तेरे सीने पर टिकी होगी
माधवी लता-सा लचकता तेरा शरीर
रस नहीं उठा रहा होगा उनके मन में
उनके मुंह में लार बन रही होगी
... पर तू नाच राधिके
कि हम भी इसी प्रेक्षागृह में हैं
हमारी आंखों की तितलियां
जा-जा बैठती हैं
तेरी उंगलियों के खिलते फूलों पर
तेरी आंखों और पैरों की गति से
बंधी है सृष्टि की लय
नाच राधिके !
कि तेरी वेणी के फूल बिखर जाएं चारों ओर,
महक उठे हवा इस प्रांगण की
तेरी बांहों की लहर में बह उठें हमारे दिल
हमारी वैचारिक जिजीविषा की उमंग
तेरे पैरों की तालों से जुड़ी है,
तेरी गति से ही तय होनी है
गति इस जड़ समाज की
और उसी गति से निखरना है रूप तेरा
तू नाच राधिके !
तू रुकी तो हम हार जाएंगे !

हे मनीषी !

हे मनीषी !
बहुत हुआ
तुम किताबों पर
डायरियों पर झुके रहे
इधर सांझ होने को आ गई
उठो !
किताबों में इन शब्दों पर फफूंद लग रही है
तैयारी करो
कल तुम्हारे शब्दों को धूप दिखाएं
चलो छत पर;
अचार के साथ
बरियों के साथ
रजाइयों के साथ-
शब्दों को धूप दिखाएं
अभी शब्दों के छिलके नरम नहीं हुए
फिर स्वाद की कौन कहे !
अभी तुमसे
बहुत कुछ मांगूंगा मनीषी,
पर पहले शब्दों को अचार ही हो जाने दो
कि बच्चे उन्हें चुराकर खाएं
कि मां बनने वाली औरतें
अपनी जीभ को संतुष्ट करें !
अब भला
इसमें कोई तुक है
कि शब्द और राजाइयां
नैपथलीन की गोलियां सूंघते रहें
और बाहर...
लोग आतंक और ठंड से ठिठुरते रहें !

धरती की गोद भर रही है

मैंने सुना है
तुम भी सुनो
मिट्टी से कान लगाकर
धरती गर्भवती है
भूखे बच्चों को सुनाओ
वे थालियां बजाएं
पेड़ों को बताओ
वे तालियां बजाएं
कहो आसमान से
झूम के बरसेगा
घर के बड़े-बूढ़े समझाएं
इन दिनों बोझ मत उठाना
सम्लकर चलना
डाक्टरनी बताएं
पौष्टिक चीजें खाना
घर के सब लोग चिंतित हो जाएंगे
धरती के लिए
मचान पर सोएं
आहट लेंगे किसानों की तरह
सगुन करो
जिन्होंने धरती के बांझपन की
अफवाह उड़ाई थी
उन्हें मुंह चिढ़ाकर गाओ
धरती की गोद भर रही है !

तीन गज़लें : मृत्युंजय मिश्र 'करुणेश'

एक

जिनका नाम न जाने कोई, जाने-माने हो गए
जिनको सब जाने, जाने क्यों वही अजाने हो गए

तुक-लय-छंद न रस से मतलब, ढूँढ़ गद्य-सा कुछ लिखकर
कविता कहकर बांच गए, कवि इसी बहाने हो गए

शुद्ध साधना कालजयी वह, कभी अकारथ नहीं गई
अब भी नए-नए लगते जो गीत पुराने हो गए

स्वाभिमान यह, चाटुकारिता वह, किस्मत अपनी-अपनी
इसको पड़ा भटकना, उसके ठौर-ठिकाने हो गए

ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ी ज़ख्मों की, त्यों-त्यों टीस जवान हुई
सब सुख चैन गए जब से दुख-दर्द सयाने हो गए

हमने इन्हें मिलाया उनसे, दोनों ही अनजाने थे
अब तो घुले-मिले ऐसे, हम ही अनजाने हो गए

पढ़ता है 'करुणेश' गज़ल तो धड़कन-धड़कन सुनती है
जाओ, उसे बुलाओ, उसको सुने ज़माने हो गए !

दो

सूखा-सूखा कहीं, कहीं डूबा है, पानी-पानी है
कैसे फसल उगे, जब मौसम की ऐसी मनमानी है

टुकड़े-टुकड़े में बंट-बंटकर, आपस में जल-मर-कटकर
किया कौन-सा काम देश का, यह कैसी कुर्बानी है

जियो और जीने दो सबको, आजादी का अर्थ यही
आजादी का अर्थ न समझो तो कितना नादानी है

मूरत बैठ गई मन में तो परिचय और अपरिचय क्या
अनजानी-अनजानी होकर भी जानी-पहचानी है

आग किसी के घर लगती हो, अपना ही घर जलता है
यही सोचकर, यही समझकर, चलकर आग बुझानी है

रिसते-रिसते घावों, घोर अभावों और तनावों में
मैं हंस-हंस जी रहा कि मुझमें मस्ती-मौज-रवानी है

उठती है तरंग मन में तो कंठ गुनगुनाने लगता
मैं कुछ गीत-गज़ल कहता हूं, मेरी यही कहानी है !

तीन

बरसात है आंखों में कि पानी तो वही है
है अपनी कहानी कि कहानी तो वही है

बिजली चमक रही है, गिरेगी कहीं जरूर
नजरो में देखता हूं, रवानी तो वही है

जो है जुबान पर, उसे कहने की मनाही
कहने को मगर बात जुबानी तो वही है

आए हैं वही लोग जरा भेस बदलकर
तसवीर पुरानी की पुरानी तो वही है

ऐसी फसल जले कि अंधेरा दिया तले
सावन की बेरुखी की कहानी तो वही है

वो हो किसी की भी तो लगे सबकी कहानी
लग जाए साफ-साफ जो, मानी तो वही है

कहता हूं तो कहते हैं कि क्या दिल की कही है
मेरी गज़ल की खास निशानी तो वही है !

मैं हूँ अब भी प्राणवंत जीवंत

केदार बाबू को केन का कवि कहा जाता है। बांदा के किनारे बहने वाली केन नदी ने केन (केदारनाथ) को देकर ऐसी काव्यधारा साहित्य में बहा दी जो सदैव के लिए अक्षुण्ण हो गई। केन नदी, उसके किनारे की पहाड़ियों, चारों तरफ फैले खेतों, ताल-तलैयाँ आदि का चित्रण जहाँ केदार बाबू अपनी कविता में करते हैं, वहीं वह अपने गांव के ग्रामीण जनों को भी याद करते हैं। केदार जी के काव्य की जनचेतना पर आनंदस्वरूप श्रीवास्तव का यह लेख उनके निधन से पूर्व ही प्रकाशन की प्रक्रिया में था। इसे अब प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद में 17 मार्च, 1996 को निराला स्मृति व्याख्यानमाला का आयोजन था। व्याख्यानकर्ता थे सुप्रसिद्ध कहानीकार दूधनाथ सिंह। अपने व्याख्यान के अंत में उन्होंने ग़ालिब के एक शेर का दृष्टांत देते हुए बड़ी अच्छी बात कही जो यहाँ केदार बाबू पर कुछ लिखने से पूर्व मुझे याद आ रही है -

बेचश्मे दिल न कर हवस-ए-सैरे-लालाज़ार
यानी कि हर वरक वरक-इंतिखाब है!

‘अगर दिल की आंख नहीं है तो अनेक रंग के फूल जो इस महाकवि की कविता में उगे हुए हैं, प्रकृति से एकात्म जिसकी हर एक कविता पुष्प है, पुष्पोद्धान है, एक पूरी प्रकृति है, वन है, जंगल है, जिसके लिए कवि बार-बार कहता है- उस प्रकृति में, उसकी कविता के जंगल में जाने में बेचश्मे दिल न कर। बिना आंख के इस कविता के बाग में सैर करने की इच्छा प्रकट मत करो- आकांक्षा मत करो, अनेक फूल हैं इनमें यानी कि निराला की हर रचना चुनिंदा, सेलेक्टेड है; यानी कि हर वरक वरके इंतिखाब।’

ग़ालिब के शेर की उपर्युक्त पंक्तियां बाबू केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं के लिए भी लागू होती हैं और ये उन्हीं के लिए नहीं, बल्कि हर उस कवि के लिए उद्भूत की जा सकती हैं जिसकी हरेक कविता पुष्प है, पुष्पोद्धान है, एक पूरी प्रकृति है, वन है, जंगल है।

हम यहाँ केदार की कविता में सैर करने निकले हैं, घूमने निकले हैं, मजे और आनंद लेने के लिए। हम नहीं जानते कि हमारे दिल की आंखें कितनी खुली हैं? हमारा दिल-दिमाग उनके काव्य के सौंदर्य व उसके रसबोध को अपने अंदर कितना भर पाता है- हम नहीं जानते।

जंगल या उद्यान में टहलने में और उसमें घूमने में -दोनों में बड़ा फर्क होता है। टहलना स्वास्थ्य के लिए हो सकता है लेकिन घूमना निष्प्रयोजन भी या फिर चिंत व मन के आनंद या बदलाव के लिए भी। घूमना सरसरी तौर पर भी रहता है- न किसी चीज से हम जुड़ते हैं, न किसी चीज पर हम रुकते हैं, बस देखा और आगे बढ़े। लेकिन हां, जब कोई चीज विशेष अपील

करती है तो उस पर हम ठहरते हैं और उसकी चर्चा करते हैं। एक घूमना सर्कस के झूले में बैठकर भी होता है। जब झूला तेज चलता है तो फिर दिल-दिमाग इतना तेज घूमता है कि न झूला दिखाई पड़ता है न बाहर की दुनिया। तो हम यहाँ सर्कस के झूले में नहीं घूमने जा रहे हैं, केदार बाबू की कविता में घूमने जा रहे हैं-बीस काव्य संकलों का विस्तृत फैलाव है और उसमें घूमने की छोटी ललक, हिम्मत। एक तरह से देखें तो केदार जी की कविताएं मन घुमाने वाली कविताएं नहीं हैं, बल्कि घूमते मन को रोकने वाली कविताएं हैं। जब उनमें संचरण का मौका मिलता है तो मन को आनंद और शांति मिलती है।

आज से कोई पच्चीस साल पहले मैंने केदार बाबू की एक कविता ‘समय का शव’ पढ़ी थी जो उनके काव्य संग्रह *आग का आइना* में छपी थी। कविता ने मुझे प्रेरित किया। समय के महत्व को इस कविता ने पहचान दी। समय कितना मूल्यवान है, इस बात को यह कविता बड़ी बखूबी से प्रकट करती है : समय का शव / न आसमान उठाता है / न जमीन उठाती है / न वायु / न उसका बेटा आज उठाता है / मगर इंसान का मारा समय / इंसान उठाता है / पीठ पर लिए लादे / न फेंकता है / न फेंकने देता है / कातिल किसी और को कातिल बताता है।

केदार बाबू का काव्य संग्रह *आग का आइना* तो जैसे जिंदगी का आइना है। उसमें जीवन को दिशा देने वाली, उसे परिभाषित करने वाली कविताएं हैं :

लंगड़े की दुनिया भी लंगड़ी है
जिंदगी एक कड़वी ककड़ी है।

.....
सबके पास है/ अपनी-अपनी किताब
दिल की बंद स्वार्थ की खुली
कोई नहीं रखता है सच का हिसाब।

केदार जी की कविताएं संपूर्ण चेतना से उद्भूत होती हैं। वे अपनी

जगह, जमीन और परिवेश से जुड़ी होती हैं। कोरी कल्पनाओं की, आसमान में उड़ने वाली रचनाएं वे नहीं लिखते, न ऐसी कविताएं उन्हें पसंद हैं।

केदार बाबू को केन का कवि कहा जाता है। बांदा के किनारे बहने वाली केन नदी ने के.न. (केदारनाथ) को देकर ऐसी काव्यधारा साहित्य में बहा दी जो सदैव के लिए अक्षुण्ण हो गई। केन नदी, उसके

किनारे की पहाड़ियों, चारों तरफ फैले खेतों, ताल-तलैयाँ आदि का चित्रण जहां केदार बाबू अपनी कविता में करते हैं, वहीं वह निराला के चतुरी चमार, बिल्लेसुर बकरिहा आदि की तरह अपने गांव के ग्रामीण जनों को भी याद करते हैं : राम पदारथ, राम निहोरे / बेनी पंडित, वासुदेव, बलदेव विधाता / चंदन चतुरी और चतुर्भुज।

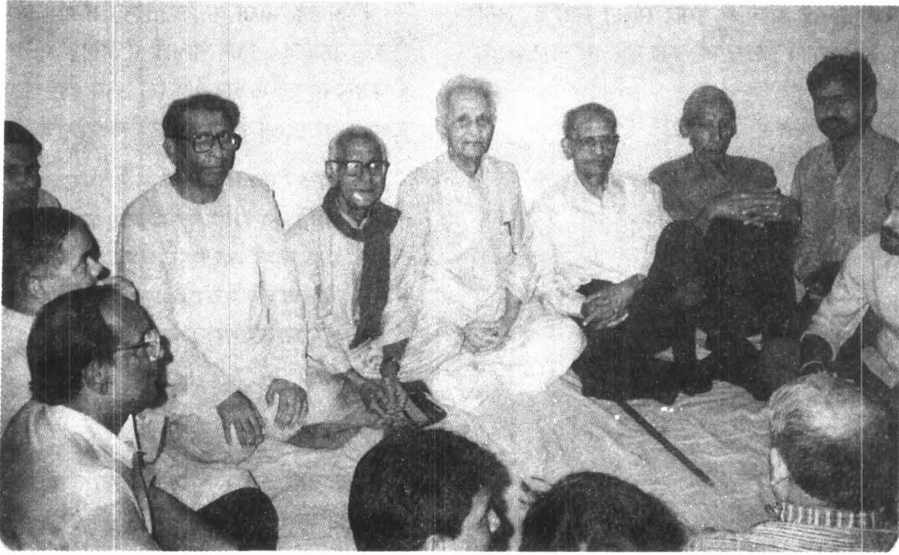
प्रगतिशील काव्यधारा के जितने भी कवि हुए हैं उनमें केदार बाबू की सबसे अलग पहचान कुछ कारणों से है— जैसे वह एक प्रतिबद्ध लेखक हैं, सरल और स्पष्ट हैं। इन्हीं विशेषताओं के प्रमाण हैं फूल नहीं रंग बोलते हैं की कविताएं! उनका यह काव्य संग्रह साठ के दशक में छपा था और इसमें उनकी श्रेष्ठ कविताएं संकलित हैं, खासतौर से प्रकृति-चित्रण से संबंधित। केन के किनारे का एक दृश्य है— एक राही जा रहा है, उसकी दृष्टि एक सांप पर पड़ती है जो धूप से तपते पत्थर पर बैठा जीभ लपलपा रहा है। बाबूजी इस दृश्य को कितनी सहजता और सरलता से अपनी कविता में उकेरते हैं :

केन किनारे / पत्थी मारे / पत्थर बैठा गुमसुम
सूरज पत्थर / सेंक रहा है / गुमसुम
सांप हवा में झूम रहा है / गुमसुम
पानी पत्थर चाट रहा है / गुमसुम
सहसा राही ताक रहा है गुमसुम!

कविता में कवि के घूमने के साथ-साथ घूमा जाए तो ज्यादा आनंद आता है। 1971 में केदार बाबू खजुराहो गए। खजुराहो जाते हुए वह महोबारूके। पठारी जगह होने से महोबा गर्मियों में धूल-धूसरित सूखा प्रदेश बन जाता है लेकिन यहां के विजय सागर तक जो सड़क जाती है, उसके लिए देखें वह क्या लिखते हैं :

जहां सब ओर है / धूल-धूसर / बिना पानी का
प्यासा प्रदेश और जहां बांध तक चली गई है / दौड़ती
हांफती, धूप से धधकती / पानी तलाशती सड़क !

- (कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. 146)



एक अनौपचारिक गोष्ठी में नामवर सिंह, शील, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा तथा चंद्रबली सिंह

ये पंक्तियां जिस काव्य संग्रह से ली गई हैं वह बाबू जी का बीसवां काव्य-संग्रह है। इस संकलन में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर 436 कविताएं संकलित हैं। इतनी कविताओं का संग्रह शायद ही किसी कवि का निकला हो। कविता में कवि के वैविध्य अनुभव और संवेदना के वृहत्तर संसार को देखना है तो

इस संग्रह की कविताओं को देखें। कविता के जो नए-नए रूप, शिल्प और आयाम हैं वे हमारी चेतना और अनुभव जगत को समृद्ध करते हैं। संग्रह की विशेषता यह है कि इसमें राजनीति और साहित्य से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों पर कविताएं लिखी गई हैं, जैसे— गांधीजी, मृत्युंजय उपाध्याय, त्रिलोचन, राजकमल चौधरी, सुदामा पांडे 'धूमिल', ठाकुरप्रसाद सिंह आदि। इसके अतिरिक्त 'मेरा गांव' कविता इस संग्रह की सबसे लंबी तुकांत कविता है जिसमें कवि ने अपने गांव का भरपूर यथार्थ चित्रण किया है :

यह है मेरा गांव यहां की कुंठित मति है।
अनुशासन से हीन यहां की जीवन गति है।
फिर भी कुंठित मति के मारे मनुजन हारे
पतझर में भी वे रहते हैं जीवन धारे।

केदार जी का एक काव्य संग्रह जो शिलाएं तोड़ते हैं 1986 में प्रकाशित हुआ। इसमें 'गांव की औरतें', 'घंटा', 'मुल्लो अहिरिन', 'बोतल के टुकड़े', 'जून की बरसात'। ऐसी कविताएं हैं जिनमें प्रगतिशीलता और क्रांतिकारिता दोनों के स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं। 'गांव की औरतें' कविता की कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं :

गांवों की औरतें / सूखा पिसान फांक-फांककर
पीठ-पेट एक कर / हाड़-तोड़ / मरती हैं पत्थर रगड़कर

गांव की औरत की व्यथा-कथा जहां उपर्युक्त पंक्तियों में चित्रित हुई है वहीं केदार बाबू के नारी की कमनीय देहाकर्षण के प्रति कुछ कविताएं जमुन जल तुम काव्य संग्रह में लिखी हैं जो 1984 में प्रकाशित हुई। 'प्यारी! मेरे जन्म गांव में' पत्नी के लिए लिखी एक अच्छी कविता है जो पति-पत्नी की घनिष्ठता को दर्शाती है प्रेम और सेक्स को लेकर लिखी जो अन्य कविताएं हैं वे कवि के प्रगतिवादी विचारधारा में होने वाले संवेदनात्मक परिवर्तन और विकास को दर्शाती हैं।

प्रगतिवादी कवि ज्यादातर निम्नमध्यमवर्गीय जीवन के चित्रण को लेकर अपनी कविता में मुखरित हुए हैं, लेकिन केदार बाबू इस चित्रण के साथ-साथ

प्रकृति-चित्रण के अनूठे बिंब, अनूठी शैली में हमारे सामने रखा है जिन्हें बार-बार पढ़ने का मन करता है। [प्रकृति चित्रण की कुछ पंक्तियां यहां दृष्टव्य हैं :

धीरे से पांव धरा धरती पर किरनों ने
मिट्टी पर दौड़ गया, लाल रंग तलुओं का
छोटा-सा गांव हुआ केसर की क्यारी-सा
कच्चे घर डूब गए केचन के पानी में

x x x

चोली फटी सरस सरसों की
नीचे गिरा फागुनी लहंगा
ऊपर उड़ी चुनरिया नीली
देखो हुई पहाड़ी विवसन
आतपतप्ता।

एक तरह से देखा जाए तो प्रकृति का यह जो निर्वसन रूप कविता में चित्रित हुआ है वह मध्यवर्गीय जीवन की कुंठाओं से उपजा प्रतीत होता है।

अपनी कविताओं के माध्यम से केदार बाबू ने पाठकों को भी सौंदर्यप्रिय और सत्यप्रिय बनाने का प्रयास किया है। कवि का यह प्रयास देखना है तो पुष्पदीप की कविताएं पढ़ना आवश्यक है। यह संग्रह 1994 में प्रकाशित हुआ। ये कविताएं 92-94 के मध्य लिखी गई हैं और ज्यादातर कविताएं मद्रास प्रवास के दौरान लिखी गई हैं। 'भोगिला भरोसा', 'भगौता', 'अयोध्या की जलाई लालटेन', 'कलमदान', 'बागा घोड़ा', 'लंगड़ा कुता' और 'दौआ बेहना' इस कृति की कुछ विचार प्रधान कविताएं हैं। 'भरोसा' कविता घर के नौकर पर लिखी कविता है। यह नौकर आज भी बाबूजी के भीतर बसा है। 1921 में जब बाबू जी ग्यारह साल की आयु में अंग्रेजी पढ़ने के लिए गांव कमासिन से रायबरेली के लिए चले तो यही नौकर भीषण कीचड़ पानी में पैदल चलकर उन्हें रेलवे स्टेशन तक छोड़ने आया। चलते समय भरोसा का प्यार से पुचकारना बाबू जी आज तक भी नहीं भूले हैं। वह उसकी प्रेरणा को आज भी सर-माथे रखते हैं।

केदार की प्रगतिशील कविता की सबसे बड़ी विशेषता है कि उसमें श्रम की महत्ता अधिष्ठापित हुई है। मानव श्रम को उन्होंने गहरे तक पहचाना है और उसे प्यार और सम्मान दोनों दिया है। गांव की तमाम समस्याओं पर जहां उन्होंने कविताएं लिखी हैं वहां भला गांव का किसान कैसे छूटा! केदार बाबू को किसान चेतना का कवि कहा जाए तो ज्यादा समीचीन होगा। किसान का गुण-गौरव निम्न पंक्तियों में देखें :

जो मिट्टी का पूर्ण पारखी
जो मिट्टी के संग साथ ही
तपकर, गलकर, जीकर, मरकर
सोने का सपना/ मिट्टी की महिमा गाता
मिट्टी के ही अंतस्थल में / अपने तन की खाद मिलाकर
मिट्टी को जीवित रखता है।

(गुलमहदी)

अखंड भारत के लिए हमारे तमाम कवि और साहित्यकारों ने अपनी लेखनी उठाई है लेकिन बाबूजी ने अखंड भारत के लिए जो कविताएं लिखी हैं वे इस मामले में अनूठी हैं कि उनमें देश के प्रति अटूट आस्था और अदम्य उत्साह भरा हुआ है। वे राष्ट्र का पूरा चित्र प्रस्तुत करती हैं :

कायरों का नहीं- वीरों का भारत
शांति का सशक्त मोरचा बन गया है
गरुड़गामी वायुयानों का
दिग्गज टैंकों का / आग उगलती बंदूकों का
अमोघ शस्त्रास्त्रों का।

- (कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ. 170)

केदार की कविता की कसौटी कुछ भी हो लेकिन जब हम उस पर अच्छी कविता की मुहर लगाते हैं तो एक ओडिया कवि की निम्न पंक्तियां याद आती हैं जो अच्छी कविता को परिभाषित करती हैं :

‘किसी भी उत्कृष्ट कला की तरह अच्छी कविता अस्तित्व का साक्षात्कार करती है। हमारी देह, हमारी आत्मा, हमारे स्वप्न, हमारी मृत्यु सब इस अच्छी कविता में आ जाते हैं। जो अब तक नहीं हुआ, जिसकी पहले कोई स्थिति नहीं थी, उसकी उपस्थिति का भान कराने का आनंद अच्छी कविता के भीतर होता है।’

केदार की कविता को गंभीरता से निरखा-परखा जाए तो उपर्युक्त पंक्तियां उनके संपूर्ण काव्य साहित्य पर सटीक बैठती हैं और ऐसी दशा में केदार बाबू एक प्रगतिशील कवि ही नहीं दिखते, बल्कि पूर्ण कवि, मुकम्मल कवि दिखते हैं।

कविता लिखते-लिखते केदार जी आज जिस पड़ाव पर हैं वहां अब भी उनमें हौसला है, जीवंतता है :

बुलंद है हौसला / जीवंत जीने का / इस बुढ़ापे में
दुर्लभ देह को - अब भी संभाले हैं
हड्डियां और मांसपेशियां...

(हिंदुस्तानी त्रैमासिकी, जू. दि. 96)

‘बूढ़ा पेड़’ कविता जो हिंदुस्तानी त्रैमासिकी में प्रकाशित हुई, उसमें भी वह यही दोहराते हैं :

हांड़ मांस का मैं हूँ बूढ़ा पेड़ / मैं हूँ अब भी प्राणवंत जीवंत / मेरी
भाषा की शाखाएं / अब भी रुचिकर रचनाओं के रूप में / कविताएं देती
रहती हैं / और मौसमी गंध बांटती रहती हैं।

ईश्वर करे, यह मौसमी गंध कवि बराबर बांटता रहे और इस गंध में हम पाठकगण डूबते-उतराते रहें- न वह तृप्त हों लिखने से, न हम तृप्त हों पढ़ने से। उन्हें पढ़ने की निरंतर प्यास बनी रहे।

उनकी काव्य वाटिका में यह मन कितना घूमा और कहां पहुंचा, हम नहीं जानते। अभी घूमने की ललक समाप्त नहीं हुई है। लेकिन अब थोड़ा विश्राम लेते हैं- आगे फिर घूमेंगे। □

निरंतर जागते कवि का सो जाना

अपनी प्रारंभिक कविताओं में प्रगतिवादाग्रही दीखने वाले केदारनाथ अग्रवाल ने धीरे-धीरे अपने काव्य को वादमुक्त करने में सफलता पाई। उनका परवर्ती काव्य उनके विशद एवं प्रसन्न कवि-कर्म का परिचय देता है और यह दिखलाता है कि 'नई कविता' कितनी रागात्मक, संप्रेषणीय तथा सहज हो सकती है। केदार जी के काव्य की प्रकृतिप्रियता पर प्रकाश डाल रहे हैं अशोक प्रियदर्शी

सन 1911 में जन्मे कवि केदारनाथ नाथ अग्रवाल सन 2000 की जून में, केन नदी के तट पर, सदा के लिए सो गए। मार्क्सवादी चेतना वाले इस कवि का कौल था : मैं समय को साधता हूँ / जिंदगी से बांधता हूँ / सूर्य की आलोक-आभा / मैं नयन में आंजता हूँ / व्याल-जैसे काल को मैं / चेतना से नाथता हूँ / काव्य की मउहर बजाते / लोक-लय में नाचता हूँ / द्वंद्व में निर्व्विद्ध होकर / मैं निरंतर जागता हूँ। किंतु काल के व्याल को नाथने की भी एक सीमा थी। 89 वर्षों की उम्र, वह भी सार्थक रचनाशीलता से भरी, छोटी नहीं होती। फिर भी, केदारनाथ अग्रवाल के चले जाने से हिंदी काव्य-जगत की क्रांतिधर्मिता थोड़ी मंद तो पड़ ही जाएगी।

किसी कवि का परिचय क्या होता है, क्या हो सकता है? केन-कूल के इस कवि ने अपना परिचय स्वयं-इस प्रकार दिया था- जागरण हैं प्राण मेरा, क्रांति मेरी जीवनी है। कवि केदार ने विश्वास व्यक्त किया था- जागरण से, क्रांति से मैं, घनघना दूंगा दिशाएं। यही कवि केदार अंततः थककर सो गया, और क्रांति की घनघनाहट थम गई। केदार के ही शब्द उधार लेकर कहें, तो दिन हिरण-सा चौकड़ी भरता चला। धूप की चादर सिमटकर खो गई।

वैसे, केदारनाथ अग्रवाल का संक्षिप्त वृत्त यों बनाया जा सकता है- चैत शुक्लपक्ष द्वितीया, संवत् 1968 में ग्राम-कमसिन, जिला-बांदा (उत्तर प्रदेश) में जन्म। बी.ए., एल.एल.बी. तक की शिक्षा पाई। लंबे समय तक बांदा में वकालत करते रहे। उनका पहला कविता संग्रह युग की गंगा सन् 1947 में प्रकाशित हुआ। नौंद के बादल, लोक और आलोक, फूल नहीं, रंग बोलते हैं, अपूर्वा आदि कविता-संकलनों के प्रकाशन से हिंदी के शीर्षस्थ प्रगतिशील कवि

के रूप में केदार जी की खास पहचान बनी। उनकी विचारधारा और काव्य-चेतना पर मार्क्सवादी विचारधारा, खासकर लेनिन की 'थ्योरी आफ काग्नशन', का गहरा असर था। इसी काग्नशन (संज्ञान) के सहारे उन्होंने अपने चारों ओर फैले लोक-जीवन और सृष्टि-प्रसार से साक्षात्कार किया, चाहे वह केन नदी हो, बुंदेलखंड के पहाड़ हों, बांदा शहर का पुराना टुनटुनिया महादेव-मंदिर हो, या पास-पड़ोस के गांव-गंवई हों ! डा. रामविलास शर्मा ने केदार जी पर लिखे अपने एक लेख में उन्हें 'केन-किनारे का गीत-विहग' कहा था।

अपनी प्रारंभिक कविताओं में प्रगतिवादाग्रही दीखने वाले केदारनाथ अग्रवाल ने धीरे-धीरे अपने काव्य को वादमुक्त करने में सफलता पाई। उनका परवर्ती काव्य उनके विशद एवं प्रसन्न कवि-कर्म का परिचय देता है और यह दिखलाता है कि 'नई कविता' कितनी रागात्मक, संप्रेषणीय तथा सहज हो सकती है। केदारनाथ अग्रवाल के साथ एक अन्य बुंदेलखंडी कवि भवानी प्रसाद मिश्र को पढ़ना सुख देता है दोनों ही प्रकृति-प्रेम और मानवीय मूल्यों के कवि हैं। अंतर केवल इतना है भवानी प्रसाद मिश्र वस्तुओं को गांधीवादी दृष्टि से देखते हैं, जबकि केदारनाथ अग्रवाल मार्क्सवादी दृष्टि से। बुंदेलखंडी

कवियों में कथन की दो-टूक भंगिमा होती है। ठेठ शैली में सीधे तरीके से ये अपनी बात कहते हैं और प्रकृति के सहज रूप के साथ एक आत्मीय संबंध बनाते हैं। भवानी बाबू की कविता 'सतपुड़ा के घने जंगल' खूब पढ़ी गई है। उसके साथ केदारनाथ अग्रवाल की 'आंधी' शीर्षक कविता को पढ़कर देखें- मैं घोड़ों की दौड़ / वनों के सिर पर तड़-तड़ दौड़ / पेड़ बड़े से बड़ा / चिरौंटे-सा चिल्लाया चौका / पत्रों के पर फड़-फड़ फड़के / उल्टे उखड़े टूटे / मौन अंधेरे के ढालों पर / सांड पठारी छूटे।



केदार जी रामविलास शर्मा और उनके छोटे भाई मुंशी के साथ फोटो: न. पु.

मजे की बात यह है कि भवानी प्रसाद मिश्र दूसरा सप्तक में सम्मिलित हैं, केदारनाथ अग्रवाल नहीं। ऐसा क्यों? ऐसा यों कि, रूप प्रकारवादियों के अर्थ में इन दोनों में से कोई प्रयोगवादी नहीं। भवानी भाई ने बताया था कि जब उन्होंने दूसरा सप्तक में अपनी कविताएं भेजी थीं तब उन्हें यह भी नहीं मालूम था कि प्रयोगवाद नाम का कोई वाद चल रहा है। केदारनाथ अग्रवाल को यह पता था। अतः उन्होंने दूसरा सप्तक में अपनी कविताएं देने से दो-टूक शब्दों में इनकार कर दिया था।

केदार जी की रूचि सामाजिक यथार्थ के चित्रण में रही और मध्य वर्ग के खोखले आदर्शों तथा सर्वहारा वर्ग के श्रम-संघर्ष की प्रेरणा उन्हें प्रेमचंद/निराला एवं पाब्लो नेरुदा ('रेल भंजकों को जगा दो' नाम से नेरुदा के काव्य का अनुवाद भी केदारनाथ ने छपाया था) से मिली। उनकी एक प्रसिद्ध कविता है- 'पैतृक संपत्ति' इसकी प्रारंभिक पंक्तियां देखें- जब बाप मरा तब यह पाया/ भूखे किसान के बेटे ने/ घर का मलबा, टूटी खटिया/ कुछ हाथ भूमि-वह भी परती/ चमरौंथे जूते का तल्ला/छोटी, टूटी बुढ़िया औंगी/ दरकी गोरसी, बहता हुक्का/ लोहे की पत्ती की चिमटी...।

लोकगीतों का संस्पर्श और मितकथन की अपूर्व सामर्थ्य! केदार जी की ऐसी कविताओं का प्रभाव मन पर गहरा पड़ता है : आर्द्र बनाकर/ छोड़ गया है/ जब से बादल/ पानी के अक्षर रोया है/ खड़े-खड़े / चुपचाप पहाड़। या हाथ में उठाए किताब सूरज की/ आदमी/ अंधरे में बैठा है। प्रकृति बहुत रिझाती है केदार जी को- खिली है/ खूब छिटकी/ पारदर्शी चांदनी। या श्यामवर्णी/ आसुरी आकाश में/ सिक्का जमाए/ वरुण के बदमाश बेटे/ मेघ। या वायु पेड़ों पर टंगी है/ फूल बनकर।

चंद्रगहना से लौटती बेर : शीर्षक कविता ने तो हिंदी के प्रकृति-काव्य में अपना अद्वितीय स्थान बनाया है- एक बीते के बराबर/ यह हरा ठिंगना चना/ बांधे मुरेठा शीश पर/ छोटे गुलाबी फूल का/ सजकर खड़ा है। पास ही मिलकर उगी है/ बीच में अलसी हठीली । देह की पतली, कमर की है लचीली/ नील फूले फूल को सिर पर चढ़ाकर/ कह रही है, जो छुए यह/ दूँ हृदय का दान उसको / और सरसों की न पूछो / हो गई सबसे सयानी / हाथ पीले कर लिए हैं/ ब्याह-मंडप में पधारी/ फाग गाता मास फागुन / आ गया है आज जैसे/ देखता हूँ मैं, स्वयंवर हो रहा है।

केदारनाथ अग्रवाल गत्यात्मक रंगों के कवि रहे हैं। उनकी कविताओं में रंगों का ऐंद्रिय संवेदन, कथ्य और शिल्प को निखारता है, सफाई देता है। बिंब इनके कथ्य को सहजता से उद्घाटित करते हैं। कुछ बिंब देखें : तैरता कुलकता है। महाकाश में/ बादल का बेटा/ सफेद, ऊनी, मुलायम / धरती की कोख का जाया / मधुआरा मेमना। या यथार्थ की शिलाएं-शाप से मुक्त/ किनारे बैठी/ अहिल्याओं-सी/ हंसती है । या फूल हैं / कि पेड़ पर बैठी पंख खोले/ झुंड की झुंड तितलियां हैं / रसराज की रंगीन अभिव्यक्तियां हैं।

राजनीति ने पूरे परिवेश को कैसा गंदा किया है, खासकर के चुनावी राजनीति ने, इस पर भी केदार ने बेबाक टिप्पणी की है, खरी-खरी कही है: मर्माहत है / प्रकृति/ बिगड़ी राजनीति से / उखड़े पड़े हैं / परार्थी पेड़ / सूरज / चांद / सितारों का / मुंह जोहते, देखने में / महापुरुष-महिधर /

वास्तव में दुष्ट दनुज-तस्कर । या चुनाव के पहले / आम आदमी रहा वह / अब / इस साल / चुनाव के बाद / जीत की कुरसी हुआ वह / आम आदमी के बजाय चौपाया हुआ वह ।

लोक-संप्रकृति के साथ सामाजिक न्याय की अभिव्यक्ति वाली यह कविता देखें, 'रनिया' के बहाने - रनिया मेरी देश-बहन है, अति गरीब है, अति गरीब है / मैं रनिया का देश-बंधु हूँ, अति अमीर / हूँ, अति अमीर हूँ.../ रनिया कहती है - जग बदले, जल्दी बदले, जल्दी बदले / मैं कहता हूँ- कभी न बदले / कभी न बदले, कभी न बदले / किंतु, आज मेरे विरोध में पूरा हिंदुस्तान खड़ा है / अब रनिया के दिन आए हैं, जग उसके माफिक बदला है।

केदार जी के काव्य-संसार में बार-बार डुबकी लगाकर भी जी नहीं अघाता। प्रगतिशील मार्क्सवादी चेतना और मसृण प्रकृति-गीतों की यह युगलबंदी अन्यत्र शायद ही मिले ! अपने पौरुष और कवित्व-शक्ति में केदार का विश्वास देखते बनता है : मैंने आंख लड़ाई / गगन विराजे राजे रवि से, शौर्य में / धरती की ममता के बल पर / मैंने ऐसी क्षमता पाई / मैंने आंख लड़ाई / महाकाल से, मृत्युंजय के मोद में / अजर-अमर कविता के बल पर/ मैंने ऐसी विभुता पाई। केदारनाथ अग्रवाल- जैसा कवि वर्तमान भ्रष्ट व्यवस्था के तंत्र में नहीं खप सकता, क्योंकि ऐसे तंत्र में वही आदमी खपा होता है / जो इसी के तामझाम में पला, बढ़ा/ और पालतू बना/व्यक्तित्व खो चुका होता है।

केदार जी अत्यंत संवेदनशील कवि हैं, शब्दों की नहीं, आंसुओं की भाषा पहचानने वाले : कुछ न कहो तुम / तुम्हें देखकर समझ गए हम बिना कहे/ बिंधे ग्लानि से/ बंधे मौन से-व्यथित हुए तुम / दुख की मार सहें/ हाड़ कोड़ कर / निकले आंसू / टपटप बहुत बरे। केदार की यह आदमीयत उन्हें हमारा इतना अपना बनाती है- दुख की मार सहें/ हाड़ कोड़ कर/ निकले आंसू / टपटप बहुत बरे। केदार की यह आदमीयत उन्हें हमारा इतना अपना बनाती है- दुख में दुखा आदमी / आदमी-आदमी के लिए तड़पता है / सुख से सजा आदमी/ आदमी-आदमी के लिए/ आदमी नहीं रहता है।

बाबा नागार्जुन ने पहचाना था केदारनाथ अग्रवाल के कवि को, उसकी समग्रता में- प्यारे भाई, मैंने तुमको पहचाना है/ समझा-बूझा है, जाना है/ केन-कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो/ कालिंजर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो! / ग्राम-वधू की दबी हुई कजरारी चितवन, वह भी तुम हो! / कुपित कृषक की टेढ़ी भौंहें, वह भी तुम हो! / लाठी लेकर काल-रात्रि में करता जो उनकी रखवाली / वह भी तुम हो!

नहीं रहे केदारनाथ अग्रवाल, याद दिलाने को रह गई है उनकी प्यारी प्रकृति : हम न रहेंगे/ तब भी तो ये खेत रहेंगे/ इन खेतों पर घन घहराते शेष रहेंगे/ जीवन देते, प्यास बुझाते.../ श्याम बदरिया के लहराते केश रहेंगे।

'नई कविता' पर जो लोग अति बौद्धिकता, अनास्था आदि का आरोप लगाते हैं उन्हें गांव के किसान के कस-बल वाले कवि केदार जी की कविताएं पढ़नी चाहिए।

मस्तमौला बसंती हवा का यह झोंका दूर चला गया है। केदारनाथ अग्रवाल नहीं रहे, यह सोचकर जी भारी हो जाता है। □

जैसे आग वा रही है फाग

केदारनाथ अग्रवाल रुढ़ अर्थों में मार्क्सवादी नहीं थे, मार्क्सवाद की उनकी समझ व्यापक जीवन-संदर्भों के साथ ही मनुष्य की सहज स्वाभाविक सौंदर्य-चेतना से जुड़ती थी। सौंदर्य-चेतना सौंदर्यबोध से आगे की यात्रा है, अगला पड़ाव है। सौंदर्यबोध तो किसी भी व्यक्ति में होगा ही, कवि और रचनाकार इन्हीं अर्थों में विशिष्ट और उल्लेखनीय होता है कि वह सौंदर्यबोध को सौंदर्य-चेतना में बदलना जानता है। केदार जी के काव्य में सौंदर्यबोध की चर्चा कर रहे हैं आचार्य सारथी

केदारनाथ अग्रवाल नहीं रहे। फिर वही स्मृति-लेखों और शोकसभाओं का सिलसिला, जो हर हिंदी कवि की नियति जैसा ही है, पहले उपेक्षा, अपमान, तिरस्कार और अवहेलना की एक असमाप्त शृंखला जैसा जीवन और मरने के बाद प्रशस्ति-गायन की होड़। 'मुक्तिबोध के निधन के बाद' नामक कविता में केदार अग्रवाल ने कहा था : अब कहा उसको युगबोध का मसीहा/अपूर्व रचनाकार क्योंकि नहीं है / मरे की प्रशस्ति है / वाह रे हम और हमारा गम / फरेब पर फिदा है मातम।

केदार जी के संदर्भ में भी यह कविता उतनी ही सटीक टिप्पणी करती है जितनी मुक्तिबोध पर। केदारनाथ अग्रवाल अपनी तरह के अकेले कवि हैं- ठीक त्रिलोचन की तरह। आधुनिकता के प्रचलित प्रतिमानों से केदार या त्रिलोचन की कविता को नापने की हर कोशिश ओछी ही साबित होगी, क्योंकि परंपरा पर अपनी गहरी और जरूरी पकड़ के बावजूद ये दोनों कवि अपने भाव-संवेदन और विचार-स्वातंत्र्य के कारण आधुनिकों के भी आधुनिक हैं। जिस देहवाद को आधुनिकता की जरूरी पहचान के रूप में रेखांकित किया जाना आज जरूरी माना जाने लगा है, केदारनाथ अग्रवाल की कविता का अकुंठ चरित्र उसी देहवाद को आधुनिक रचनात्मक संदर्भों में न सिर्फ परिभाषित करता है, बल्कि मार्क्सवादी सौंदर्यपरक दृष्टि के साथ देहवाद को उद्घाटित भी करता है। शमशेर बहादुर सिंह के काव्यजगत में मांसलता और देह के बिंब उतने मुखर और स्पष्ट नहीं हैं, जितने केदार के यहां हैं, शमशेर के यहां उलझी हुई रागात्मक अनुभूतियां हैं तो केदार के यहां उन्नत उरोजों, पुष्ट नितंबों और कसी हुई देहदृष्टि को चित्रित करती अनेकानेक कविताएं हैं। प्रकृति से जुड़ी कितनी ही कविताओं में केदार अपनी विशिष्ट आनुभूतिक अभिव्यंजना के कारण निरंतर याद आएंगे :

चोली फटी सरस सरसों की / लहंगा गिरा फागुनी नीचे
चूनर उड़ी अकासी नीली / नंगी हुई पहाड़ी देखो।

आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व शमशेर बहादुर सिंह ने केदारनाथ अग्रवाल की कृति फूल नहीं रंग बोलते हैं की समीक्षा करते हुए कहा था-

'केदार जिस खोज की तरफ बढ़ा है वह है, समाज का सत्य और प्रकृति का खुला नैसर्गिक सौंदर्य। अन्याय के खिलाफ और मेहनत के पक्ष में वह बेझिझक बोलता है। उसके व्यंग्य में दोहरी-तिहरी धार नहीं, सीधी एक धार। मगर वही बहुत काफी होती है। ऐसा खुले हृदय का उन्मुक्त साहसी कवि सौंदर्य और प्रेम की सुषमा और सौष्ठव पर दृष्टि डालता है तो सहज ही अपनी अनुभूतियों से हमें मोह लेता है। इतना खुला प्यारापन जिसमें दिखावट और बनावटीपन का नाम नहीं, साथ ही इतना गंभीर और मर्यादित जितना कि गहरा प्रेम वास्तव में होता है, एक ऐसा उधरापन भी, जैसा कि प्रकृति के खुले-फैले प्रांगण में सब ओर मिलेगा...नदी, पेड़, पत्ती फूल, टहनी, चट्टान, हवा, वातावरण-विशेष सब हमारी आंखों में खुल-सा जाता है।'

इसी समीक्षात्मक लेख में शमशेर जी ने एक जगह लिखा है- 'केदार मध्यवर्ग की जाति-पांति, धर्म-गोत्र और वर्ग विभाजित संस्कृति की दारुण दशा से परिचित हैं। आज नागर मध्य वर्ग का बहुत बड़ा हिस्सा अंधी गलियों में ही अपनी अर्ध-चेतना में कुलबुला रहा है। उससे बाहर आने की वैज्ञानिक प्रेरणा उसमें नहीं है, न साहस। आज अपने खोखलेपन, ऊब और आत्म-प्रताड़ना आदि के ही मुक्तछंद सुनाने को विवश है। आज के साहित्य की नकारात्मक नैराश्यपूर्ण फिजा में केदार का स्वर एक ऐसे सजग मध्यवर्गी बुद्धिजीवी का है जिसे श्रम से, कर्मठता से, किसान और श्रमिक की अंततोगत्वा 'एकजुट जीवतता से- जो प्रकृत्या कभी हार मानना नहीं जानती और साथ ही शक्तिगर्भा प्रकृति के सौंदर्य, नैकट्य और बंधुत्व से- और इन सबसे उपलब्ध अपने दुर्दमनीय आशावाद से मर्दानावार जीने की प्रेरणा ले रहा है, और दूसरों को दे रहा है। इसी जिंस की आज हमें कितनी आवश्यकता है, और वह कितनी कम उपलब्ध है।'

वस्तुतः केदारनाथ अग्रवाल रुढ़ अर्थों में मार्क्सवादी नहीं थे, मार्क्सवाद की उनकी समझ व्यापक जीवन-संदर्भों के साथ ही मनुष्य की सहज स्वाभाविक सौंदर्य-चेतना से जुड़ती थी। सौंदर्य-चेतना सौंदर्यबोध से आगे की यात्रा है, अगला पड़ाव है। सौंदर्यबोध तो किसी भी व्यक्ति में होगा ही, कवि और रचनाकार इन्हीं अर्थों में विशिष्ट और उल्लेखनीय होता

है कि वह सौंदर्य-बोध को सौंदर्य-चेतना में बदलना जानता है। एक सचेतन रचनाकार, सौंदर्य चेतना का चितेरा कवि कीचड़ और कमल दोनों पर एक जैसी तन्मयता से कविता लिख सकता है, किसी कुरूप अंधी भिखारिन की दारुण दशा पर उतनी ही प्रभावशाली काव्यात्मक टिप्पणी कर सकता है, जितनी किसी सुकुमार बाला के शारीरिक सौंदर्य पर मुग्ध होकर वह कविता लिख सकता है। साहित्य की मार्क्सवादी चेतना व्यक्ति के जीवन को भी इतना ही महत्वपूर्ण मानती है, जितना महत्व विचार की भौतिक शक्ति को देती है।

मार्क्सवाद जीवन की समग्रता, रागात्मकता, शारीरिक आग्रहों को कभी हेय दृष्टि से नहीं देखता, मनुष्य को उसकी संपूर्णता में संदर्भित और मुखरित करता है। इसी कारण मार्क्सवाद सभी तरह के शोषण के विरुद्ध है, क्योंकि किसी भी तरह के शोषण से मानव जीवन की समग्र प्रवाह बाधित होती है। केदारनाथ अग्रवाल ने मार्क्सवाद को मनुष्य की जिजीविषा और उसकी सौंदर्यप्रियता दोनों से एक साथ जोड़कर देखने का अद्भुत कार्य किया था। संभवतः इसीलिए उनके समकालीन नागार्जुन ने उनके प्रति अपनी भावनाएं इस तरह व्यक्त की थीं जिनमें केदार जी की जन संलग्नता के साथ ही उनके प्रकृति-प्रेम को भी समझा जा सकता है :

...प्यारे भाई, मैंने तुमको पहचाना है
समझा-बूझा है, जाना है...
केन-कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो !
कालिंजर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो !
ग्रामवधू की दबी हुई कजरारी चितवन,
वह भी तुम हो !
कुपित कृषक की टेढ़ी भौंहें, वह भी तुम हो !
खड़ी सुनहरी, फसलों की छवि-छटा निराली
वह भी तुम हो !
लाठी लेकर कालरात्रि में करता जो उनकी रखवाली
वह भी तुम हो !

जनगण-मन के जाग्रत शिल्पी
तुम धरती के पुत्र : गगन के तुम जामाता !
नक्षत्रों के स्वजन कुटुंबी, सगे बंधु तुम / नद-नदियों के !

केदारनाथ अग्रवाल ने जीवन के सुर-ताल और मनुष्य की चेतना की लय को बखूबी जाना था इसी कारण उनकी कविता में लयात्मकता भी है और गीतात्मकता भी :

हे मेरी तुम / आज धूप जैसे ही आई / और दुपट्टा / उसने मेरी छत



हे मेरी तुम !

केदार जी अपनी धर्मपत्नी पार्वती के साथ

फोटो : नरेंद्र पुंडरीक

पर रक्खा / मैंने समझा तुम आई हो / दौड़ा
मैं तुमसे मिलने को / लेकिन, मैंने तुम्हें न देखा
/ बार-बार आंखों ने खोजा / वही दुपट्टा मैंने
देखा / अपनी छत के ऊपर रक्खा / मैं हताश
हूँ / पत्र भेजता हूँ, तुम उत्तर जल्दी देना /
बतलाओ क्यों तुम आई थीं / मुझसे मिलने
/ आज सवेरे / और दुपट्टा रखकर अपना /
चली गई हो बिना मिले ही? / क्यों / आखिर
इसका क्या कारण?

प्रेम की ऊर्जा से सराबोर दिनों का मानवीकरण करके और उन्हें स्त्री-देह के खुलेपन से जोड़कर देखने वाले केदारनाथ अग्रवाल को अनेक आलोचक 'फार्मलिस्ट' कवि मानते रहे हैं। जैसे उनकी यह कविता है:

भूल सकता मैं नहीं / ये कुच-खुले दिन
ओठ से चूमे गए / उजले, धुले दिन,
जो तुम्हारे साथ बीते / रस-भरे दिन,
बावरे दिन,
दीप की लौ-से / गरम दिन।

'फार्मलिस्ट' को 'रूप-प्रकारवादी' और 'फार्मलिज्म' को 'रूप-प्रकारवाद' से संबोधित कर केदारनाथ अग्रवाल की चर्चा करते हुए शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है- 'रूप-प्रकारवाद' के कई अर्थ हैं, जिनमें कई एक-दूसरे के विरोधी भी जान पड़ते हैं। ऊपरी, रूप प्रकार की, स्थूल योजना पर अधिक ध्यान देना-बल्कि उसमें उलझ जाना या उसी के फेर में ज्यादा रहना : यह एक तरह का रूप-प्रकारवाद है। एक न एक स्टेज पर इस तरह का रुझान सब नहीं तो अधिकांश कवियों में मिलेगा, मगर आरंभिक दौर में यह ज्यादा मिलेगा, जो कि अभ्यास और प्रभावों का दौर होता है।...त्रिलोचन या केदार के यहां अभ्यास के रूप में, या कहीं-कहीं केदार में 'क्लासिक' के अनुसरण में - मसलन कालिदास या वाल्मीकि के- यह दृष्टिगत होगा, मगर उनका लक्ष्य, खासकर केदार का, कभी भी किसी विशिष्ट रूप-प्रकार की बुनियाद में जो प्राथमिक अनुभूति का तथ्य होता है, उसके सहारे अपनी ही विशिष्ट अनुभूति को जोड़ना है। इस बात को ध्यान में रखकर अगर हम केदार की कविता को परखें तो वह उन अर्थों में रूप-प्रकारवादी नजर न आएंगे जिन अर्थों में आमतौर से रूप प्रकारवादी को लिया जाता है।'

डा. रामविलास शर्मा ने 1955 में केदारनाथ अग्रवाल को लिखे अपने एक व्यक्तिगत पत्र में कहा था- 'तुम्हारी कविताओं में सबसे बड़ा गुण यह है कि वह लोककला के इतनी नजदीक है कि उसका एक अंग-सा बन गई है। वह जनता द्वारा तुरंत अपनाई जा सकती है और उसके जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन ला सकती है। इसलिए तुम बाबू लोगों की राय की चिंता न

पृष्ठ 37 पर जारी

मर्त्य होकर भी नहीं मैं मर्त्य हूँ !

केदारनाथ अग्रवाल हिंदी प्रगतिशील कविता के अंतिम सबसे गौरवपूर्ण स्तंभ थे, जिन्होंने 90 वर्ष की एक शानदार जिंदगी जीते हुए 22 जून को अंतिम सांस ली। पहले नागार्जुन फिर डा. रामविलास शर्मा और डा. शर्मा के मात्र तेईस दिन बाद केदार बाबू हमारे बीच नहीं रहे। यदि देखा जाए तो इन तीनों का इतने कम समय में अपने बीच से उठ जाना हमारे बीच आ रहे दुर्दिनों का संकेत है। — नरेंद्र पुंडरीक की श्रद्धांजलि

केदारनाथ अग्रवाल हिंदी प्रगतिशील कविता के अंतिम सबसे गौरवपूर्ण स्तंभ थे, जो 90 वर्ष की एक शानदार जिंदगी जीते हुए 22 जून, गुरुवार को रात 8.30 बजे अंतिम सांस ली। पहले नागार्जुन फिर डा. रामविलास शर्मा और डा. शर्मा के मात्र तेईस दिन बाद केदार बाबू हमारे बीच नहीं रहे। यदि देखा जाए तो इन तीनों का इतने कम समय में अपने बीच से उठ जाना हमारे बीच आ रहे दुर्दिनों का संकेत है।

ये तीनों जीवन भर अपनी जिद पर अडिग रहे। यदि देखें तो हम पाएंगे कि जिद ही इनके कृतित्व की जीवनी शक्ति रही है। ये तीनों ही ऋषि थे, एक ऋषि की तरह साधना की, इन तीनों की अपनी अलग-अलग विशेषताएं रही हैं जिन पर ये इतना काम कर गए हैं कि मृत्यु लंबे समय तक इन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती है।

मृत्यु के बाद मृत्यु से अप्रभावित यह अमर कवि बांदा की धरती में कमासिन गांव में पहली अप्रैल 1911 को में पैदा हुए। इनकी मां का नाम घसिट्टो एवं पिता हनुमान प्रसाद थे, जो बहुत ही रसिक प्रवृत्ति के थे। रामलीला वगैरह में अभिनय करने के साथ ब्रजभाषा में कविता भी लिखते थे। केदार बाबू ने काव्य के संस्कार अपने पिता से ही ग्रहण किए थे।

इनके पिता 'प्रेमयोगी मान' उपनाम से कविताएं में लिखते थे। *मधुरिमा* शीर्षक से उनकी कविताओं का एक संकलन 1985 में परिमल प्रकाशन इलाहाबाद ने प्रकाशित किया है। रमाशंकर शुक्ल रसाल इनके पिता के मित्र थे, रत्नाकर जी से भी पिता की मित्रता थी। इनकी मंडली के बीच केदार जी अक्सर अपने पिता के साथ जाते थे। इस वातावरण का प्रभाव केदार जी पर पड़ा। सो शुरूआत इनकी

कविता और सवैये से हुई जो इन्होंने खड़ी बोली में 'बालेंदु' उपनाम से लिखे।

केदार बाबू की शुरूआती शिक्षा अपने गांव कमासिन में ही हुई। कक्षा तीन पढ़ने के बाद रायबरेली पढ़ने के लिए भेजे गए, जहां उनके बाबा के भाई गया बाबा रहते थे। छठी कक्षा तक रायबरेली में शिक्षा पाकर, सातवीं-आठवीं की शिक्षा प्राप्त करने के लिए कटनी एवं जबलपुर भेजे गए, वह सातवीं में पढ़ ही रहे थे कि नैनी (इलाहाबाद) में एक धनी परिवार की लड़की पार्वती देवी से विवाह हो गया, जिसे उन्होंने पत्नी के रूप में नहीं प्रेमिका के रूप में लिया— गया, ब्याह में युवती लाने/प्रेम ब्याह कर संग में लाया।

विवाह के बाद उनकी शिक्षा इलाहाबाद में हुई। नवीं में पढ़ने के लिए उन्होंने इविंग क्रिश्चियन कालेज में दाखिला लिया। पिताजी उनके साथ रहकर वैद्यकी करते थे और रसाल जी की संस्था 'रसिकमंडल' में जाते, जिसमें रत्नाकर जी भी आते थे। केदार बाबू 'रसिक मंडल' की बैठक में पिता के साथ जाते थे। कविता की शुरूआत केदार बाबू ने इन्हीं दिनों की। इंटर की पढ़ाई पूरी करने बाद केदार बाबू ने बी.ए. की पढ़ाई के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में दाखिला लिया।

यहां उनका संपर्क शमशेर और नरेंद्र शर्मा से हुआ। घनिष्ठता बढ़ी। उनके काव्य संस्कारों में एक नया मोड़ आया। साहित्यिक गतिविधियों में सक्रियता बढ़ी। फलतः वह बी.ए. में फेल हो गए। इसके बाद कालांत पढ़ने कानपुर आए। यहां डी.ए.वी. कालेज में दाखिल लिया। यहां इनकी मुलाकात बालकृष्ण बल्लुवा से हुई जिनके सान्निध्य से वह तमाम देशी-विदेशी



केदार जी युवावस्था में

फोटो : न.पु.

रचनाकारों से परिचित हुए, उनकी कविता की दृष्टि एवं तेवर में बदलाव आया। कानपुर में रहते हुए ही मजदूरों के नजदीक आए, उनके जीवन को नजदीक से देखा जिसका प्रभाव उनकी कविता में बहुत गहराई से पड़ा। मजदूरों के जीवन पर उन्होंने कई कविताएं लिखी—*चोटों पर चोटें धनकी / खाकर कभी नहीं तड़की है/ उस हड्डी पर—उस पसली पर/ श्रमजीवी की उस छाती पर/ कानपुर का शहर सजीला/ कई मील के लंबे चौड़े/ मिलों कारखानों को घेरे/ घंटाघर ले बसा हुआ है।*

कानपुर में वकालत पढ़ने के दौरान ही वह निराला जी से मिलने के लिए साइकिल से लखनऊ आए। निराला जी उन दिनों लखनऊ में भूसा मंडी में रहते थे, यहीं उनकी मुलाकात निराला जी ने डा. रामविलास शर्मा से कराई। निराला जी की कविता एवं डा. शर्मा की वैचारिक दृष्टि एवं आलोचना दृष्टि से गहरे प्रभावित हुए। डा. शर्मा इस समय कीट्स पर शोध कर रहे थे। कीट्स को डा. शर्मा से सुना। कानपुर प्रवास में निराला एवं डा. शर्मा से मिलन ने मार्क्सवाद की द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के प्रभाव की छाप अधिक रूप से डाल दी। डा. शर्मा के साथ उनकी मित्रता ने हिंदी साहित्य में एक मिसाल प्रस्तुत की। डा. शर्मा की मृत्यु को अभी पूरा एक माह भी नहीं हुआ था कि केदार बाबू अपनी बेदाग चादर समेटकर चल दिए। जो कभी सोचा नहीं गया, वह सब इतनी जल्दी घट गया।

सन् 37 में कानपुर से वकालत पास करने के बाद सन् 38 में बांदा आए। इस समय उनके चाचा बाबू मुकुंद लाल शहर में नामी वकीलों में से थे। उनके साथ रहकर वकालत करने लगे। चाचा का वह बहुत अदब करते थे। सो उनके डर से रात में चुपचाप कविता लिखते थे। कुछ दिन बाद उनके चाचा बांदा से वकालत छोड़कर, इलाहाबाद चले गए। लेकिन वहां से भी वह केदार जी पर निगरानी रखते थे। इनका कविता से लगाव उन्हें पसंद नहीं था। उनकी मृत्यु पर केदार जी ने यह कविता लिखी :

*छांह का छतुरी फटी/आलोक बरसा/
अब मिला जिसके लिए/ मैं नित्य तरसा।*

कविता के प्रति उन्हें इतना लगाव था कि चाचा की मृत्यु के बाद गृहस्थी का जो



युवा केदार और रामविलास तथा एक अन्य

फोटो : नरेंद्र पुंडरीक

बोझ उन पर आ रहा था उसकी चिंता कम आजादी से कविता लिखने की सुखद अनुभूति ज्यादा थी।

वकालत केदार जी के लिए कभी पैसा कमाने का जरिया नहीं रही। कचहरी ने उनके दृष्टिकोण को मार्क्स के दर्शन के प्रति और आधारभूत दृढ़ता प्रदान की।

सन तिरसठ से सत्तर तक सरकारी वकील रहे। सन 1972 में बांदा में अखिल भारतीय प्रातिशील लेखक संघ के सम्मेलन का आयोजन किया। सन 1973 में उनके

काव्य संकलन *फूल नहीं रंग बोलते हैं* के लिए उन्हें 'सोवियत लैंड नेहरू' सम्मान दिया गया। 1974 में उन्होंने रूस की यात्रा संपन्न की। 1981 में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने पुरस्कृत एवं सम्मानित किया 1981 में मध्य प्रदेश प्रातिशील लेखक संघ ने उनके कृतित्व के मूल्यांकन के लिए 'महत्व केदारनाथ अग्रवाल' का आयोजन किया। 1987 में 'साहित्य अकादमी' ने उन्हें उनके *अपूर्वा* काव्य संकलन के लिए अकादमी सम्मान से सम्मानित किया। वर्ष 1990-91 में मध्य प्रदेश शासन ने उन्हें मैथिलीशरण गुप्त सम्मान से सम्मानित किया। वर्ष 1986 में मध्य प्रदेश साहित्य परिषद द्वारा 'तुलसी सम्मान' से सम्मानित किया गया। वर्ष 1993-94 में उन्हें बुंदेलखंड वि.वि. ने डी.लिट की उपाधि प्रदान की और हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने 'साहित्य वाचस्पति' उपाधि से सम्मानित किया।



युवा केदार और नागार्जुन

फोटो : न. पुं.

केदार जी ने अपनी कविता सृजन की प्रेरणा एवं विकास की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'मेरे पिता स्व. हनुमान प्रसाद खड़ी और ब्रजभाषा में कभी-कभी कविताएं लिखते थे। उनके पास हिंदी साहित्य की पुस्तकें थीं, उन्हें सुनता था एवं पुस्तकें उलटता-पलटता रहता था। मुझे कविता लिखने की रुचि सन 26-27 ई. से हुई और मैं कविता से निरंतर जुड़ा चला गया और मुझे अपनी प्रतिभा को निखारने का अवसर मिलता गया। संसार में कविता ने ही मुझे आदमी बनाया और मैं भी जीवन दर्शन से प्रेरित होकर नेक मानवीय बोध और विचार की कविताएं लिखने लग गया। मुझे द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का दर्शन ही सर्वोत्तम मानवीय बोध का दर्शन लगा। पुरानी भ्रांत धारणाएं समाप्त हो गईं। इसके सामने प्राचीन समस्त जीवन दर्शन के सिद्धांत अर्थहीन लगे। यही कारण था कि मैं न तो किसी परम शक्ति या ईश्वर में विश्वास करता हूं न आदमी से बढ़कर किसी

देव-दानव को मानता हूँ। मनुष्य है, उसकी चेतना ही सृष्टि है, दूसरी एक सृष्टि प्रकृति की है वह चेतन नहीं है, चेतना ने श्रम करते-करते चेतना अर्जित की और स्वयं को, देश को, विश्व को मानवीय बोध का बनाने का द्वंद्व और संघर्ष करने लगा यही सत्य है- चिर सत्य है।'

उपर्युक्त कथन केदार जी ने 13.3.95 के अपने एक पत्र में विष्णु प्रभाकर जी को लिखा था, जो आत्म वक्तव्य की शैली में है।

केदार जी की कविता में यदि नदी है तो वह सामान्य नदी न होकर चेतना की नदी है। पहाड़ है तो वह जड़ पहाड़ न होकर चेतना के सापेक्ष अपने को लाता-बदलता है। चिड़िया है, फूल है, पेड़ हैं सभी अपने सामान्यीकरण से अलग विशिष्ट चेतना के स्वरूप हैं। कचहरी उनके पैसा कमाने का साधन नहीं अपितु अपनी चेतना को दुरुस्त करने की प्रयोगशाला है जिसमें मार्क्सवाद के घोल को चढ़ाकर रचना का यह विशाल स्तूप केदार ने खड़ा किया :

युग की गंगा (1947), नींद के बादल (1947), लोक और आलोक (1957), फूल नहीं रंग बोलते हैं (1965), आग का आइना (1970), देश-देश की कविताएं, अनुवाद (1970), गुल मेंहदी (1978), पंख और पतवार (1979), हे मेरी तुम (1981), मार प्यार की थारों (1981), कहे केदार खरी-खरी (1983), बंबई का रक्त स्नान (1983), अपूर्वा (1984), बोलें बोल अबोल (1985), जो शिलाएं तोड़ते हैं (1985), जमुन जल तुम (1984), अनिहारी हरियाली (1990), खुली आंखें-खुले डैने (1992) आत्मगंध (1986), पुष्पदीप (1994), वसंत में हुई प्रसन्न पृथ्वी (1996), कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह (1997), चेता नैया खेता (नई कविताओं का संग्रह परिमल प्रकाशन इलाहाबाद से शीघ्र प्रकाशित)

गद्य साहित्य- समय-समय पर (1970), विचार बोध (1980), विवेक-विवेचन (1980), यात्रा संस्मरण-बस्ती खिले गुलाबों की (1974), दतिया (उपन्यास) (1985), बैल बाजी मार ले गए (अधूरा उपन्यास) जो साक्षात्कार मध्य प्रदेश साहित्य परिषद की पत्रिका में प्रकाशित।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता हमारे समाज की विडंबनाओं एवं त्रासदियों से सीधे साक्षात्कार करते हुए जिस तरह से अपने परिवेश में उपादानों, नदी-पहाड़-खेत, पेड़ आदि को एक नई पहचान देकर, उनके प्राकृत सौंदर्य को अपने यहां के आदमी को विसंगतियों से उबारने एवं उसकी पहचान को बनाने एवं उसे सामने लाने का जो कार्य केदार की कविता ने किया है, उसकी मिसाल प्रगतिशील हिंदी कविता में दूसरी नहीं है। इसमें उनके जीवन के ठोस अनुभवों के साथ-साथ परिवेश का एक विशिष्ट बांकपन अपनी रूप में सामने आया है जो अप्रतिम हैं। अंत में :

मुक्त हूँ मैं/ चेतना की/
पारदर्शी/सत्यदर्शी/ चांदनी में/
जी रहा हूँ/ बज रहा हूँ/
काव्यकंठी/ रागिनी में/
प्राणपन से/ मर्त्य होकर भी/
नहीं मैं मर्त्य हूँ !

□

जैसे आग गा रही है फाग

पृष्ठ 34 से जानें

करके उन्हीं भूमिसुतों के लिए लिखो जिनके तुमने गीत गाए हैं, जिन्होंने बांदा की वकालत में भी तुम्हारे विश्वास को जीवित रखा है...।' कहने की जरूरत नहीं कि केदार जी ने अपनी कविताओं में भारतीय जन-जीवन को न सिर्फ चित्रित किया, मेहनतकशों और भूमिपुत्रों को लयात्मकता और जीवन की सरसता का बोध भी दिया। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

वह / सुबह की चांदनी है / ओस से भीगी हुई
धूप का दर्पण लिए ओट में गूंगी खड़ी / वह
नदी के नील जल की वासना है
जो कगारों को डिगाए जा रही है !

... ..
जल रहा है / जवान होकर गुलाब / खोलकर होठ / जैसे आग गा
रही है फाग / खिला है अग्निम प्रकाश / संध्या प्रकाश में... / न
वह याद रहता है मुझे / न वह, / बस याद रहता है मुझे / रंग शेर.
.. / फैलता फूलता फलता : अछोर / डूबता हूँ जिसमें मैं / और
डूबती हो तुम / एक दूसरे को अंक में समोए / भाव से विभोर /
रंग नहीं, रथ दौड़ते हैं / रंगीन फूलों के / सांध्य गगन में !

... ..
दिन हिरण-सा चौकड़ी भरता चला।
धूप की चादर सिमटकर खो गई
खेत, घर, वन, गांव का
दर्पण किसी ने तोड़ डाला
शाम की सोना-चिरैया
नीड़ में जा सो गई
पेड़-पौधे बुझ गए जैसे दिए
केन ने भी जांच अपनी ढांक ली
रात है यह, रात अंधी रात
और कोई कुछ नहीं है बात !

... ..
चली गई है कोई श्यामा
आंख बचाकर, नदी नहाकर
कांप रहा है अब तक व्याकुल
विकल नील जल !

... ..
छोटे हाथ, सवेरा होंते / लाल कमल-से खिल उठते हैं
करनी करने को उत्सुक हो - / धूप-हवा में हिल उठते हैं !

केदारनाथ अग्रवाल ने राजनीतिक टिप्पणी करते हुए भी अनेकानेक कविताएं लिखी हैं, और उन कविताओं का रंग भी कुछ अलग ही है, जो भरपूर असर डालता है, ठीक वैसे ही प्रकृति और मनुष्य के चिरस्थायी संबंध को रूपायित करने वाली केदार की कविताएं भारतीय कविता की महत्वपूर्ण निधि हैं।

□

केन-कूल का कर्मठ कवि



केन किनारे पलथी मारे
कवि केदार केन के तट पर ध्यान मुद्रा में फोटो : न.पुं.

‘अभी तुम्हें अपना कैरियर बनाना चाहिए। जीवन में जो देखना है, समझना है, अनुभव करना है... उसको तो लिखना होता है।... यथार्थ का वर्णन होना चाहिए। रचनाएं केवल काम भावनाओं पर नहीं होनी चाहिए।’ — केदार जी को याद कर रहे हैं राजेश कुमार गुप्त ‘गुड्डू’

केन कूल का कर्मठ पानी
चट्टानों के ऊपर चढ़कर
मार रहा है घूंसे कसकर
तोड़ रहा है तट चट्टानी !

मेरी पुस्तक पर उनके द्वारा लिखित ये पंक्तियां मेरे पास एकमात्र और पूर्ण यादगार दस्तावेज हैं। इन पंक्तियों को लिखते व पढ़ते समय मुझे तो एकबारगी विश्वास ही नहीं होता है कि वह अब हमारे बीच नहीं रहे।

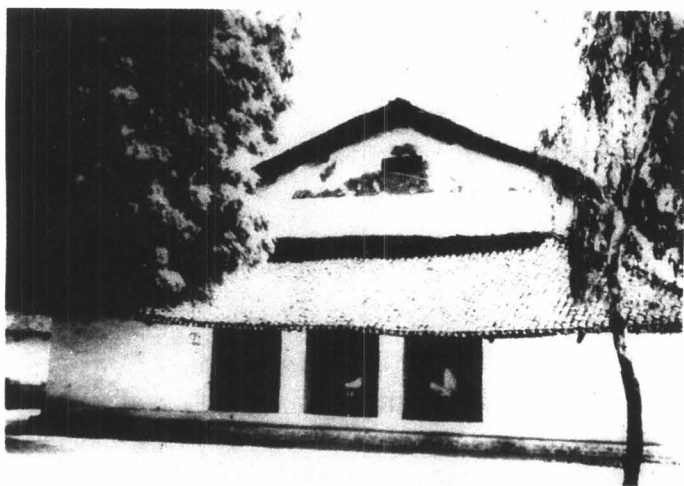
आखिर अपने घूंसे से चट्टानी तट को तोड़ने वाला कालजयी कवि कभी काल कवलित हो सकता है !

दो जून शुक्रवार का दिन था जब मेरी बाबू केदारनाथ अग्रवाल जी से अंतिम मुलाकात हुई।

‘अंतिम’ शब्द को लिखते हुए मुझे गहन दुख है और मेरा मन इस कटु सत्य को स्वीकार करने को तैयार ही नहीं होता क्योंकि ये बाबू जी के ही शब्द थे, “अगली बार एक डायरी लेकर आना। मैं कुछ ज्यादा लिखूंगा।”

यह तो मेरा दुर्भाग्य रहा कि मैं उनके पास अगली बार नहीं पहुंच सका और वे इसके पहले ही...

मुझे मेरे चचेरे भाई आशीष, जो कि इस समय साथ में हैं, ने 2 जून की शाम पांच बजे का समाचार सुनकर बताया, “भैया, बांदा के किसी कवि का निधन हो गया?”



बांदा स्थित केदार जी का आवास

फोटो : न.पुं.

अब मैंने कमरे में इधर-उधर नजर दौड़ाई और देखा कि निराला जी

॥ श्रीगुरुदेव नमः ॥
 ॥ १२ अक्षरों के अक्षरों पर
 जो रुका है उसे फेंक कर
 (१३ रुका है) ॥ १२ अक्षरों में
 के अक्षर
 २-६-२००८

अब उनके बिना बांदा की केन नदी हमेशा उदास रहेगी! □

उन्होंने बताया
कि नहीं, वह एक
विदेशी लड़की की

आज केन बेहद उदास है !

बांदा की जिस केन नदी को एक रोज केदार जी ने उदास देखा था, वह आज अवश्य बिल्कुल उदास होगी और जिस गंगातट पर केन उमड़ी आई थी, आज वह भी बिल्कुल उदास है। —केदार जी को सांवलिया बिहारी शरण की श्रद्धांजलि

मेरे अग्रज स्व. कविवर कन्हैया जी प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़ चुके थे। बांदा में कविवर केदारनाथ अग्रवाल ने प्रदेश लेखक संघ का जो अभूतपूर्व महासम्मेलन किया था उसमें मेरे अग्रज ने भी भाग लिया था। हमारे परिवार में उस अवसर पर किए गए ग्रुप फोटो की प्रति सुरक्षित है। अतएव, मैं हिंदी साहित्य का विद्यार्थी होने के नाते केदार जी को जान चुका था।

पर, केदार जी का काव्य संकलन *फूल नहीं रंग बोलते हैं* मुझे उनकी साठवीं वर्षगांठ पर पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। घटना यों है कि परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद के शिवकुमार सहाय ने पटना में इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक *मेलजोल* के लिए लिखकर देने का अनुरोध किया। मंडली के लोगों ने सुझाया कि *आलोचना* में है केदारनाथ अग्रवाल पर पर्याप्त सामग्री। फलस्वरूप, मैंने निवेदन किया कि मुझे 'केदार जी का कोई संकलन पहले दिया जाए, उक्त विशेषांक मैं बाद में पढ़ लूंगा। तमिल भाषा के विद्वान भारती भक्त जी के सौजन्य से मुझे *फूल नहीं रंग बोलते हैं* की प्रति प्राप्त हुई। स्वभावानुसार मैंने रमकर केदार जी को पढ़ा। जो लिखकर दिया उसे

मेलजोल में तो छपा ही गया, केदार जी की साठवीं सालगिरह पर जो अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित हुआ उसमें भी, मेरी रचना को स्थान दिया गया। बाकी रचनाएं *आलोचना* से उद्धृत हैं।

वहां कालक्रम से मैंने तीस वर्षों में प्रकाशित अपनी रचनाओं से कुछेक का संकलन *एक वसंत और* शीर्षक से सन् 1994 में पुस्तकाकार प्रकाशित करवाया जिसमें केदार जी पर प्रकाशित वह रचना भी शामिल है। इस पुस्तक के प्रकाशन की पृष्ठभूमि में केदार जी के अनन्य मित्र डा. रामविलास शर्मा का सुझाव जुड़ा हुआ है। रामविलास जी, निराला जी पर शोध के सिलसिले में छपरा शहर पधारे हुए थे। छपरा में सन् 1953 में बुद्धिजीवियों के एक सम्मेलन में उन्होंने कहा था कि आपके यहां कन्हैया जी, मूसा कलीम साहब और यादवचंद्र पाण्डेय जैसे सशक्त कविगण हैं, पर इनकी रचनों का कोई संकलन नहीं है, समीक्षा तो संकलन की होती है। कन्हैया जी का देहांत 24 अक्टूबर, 1986 को हो गया। मुझसे अक्सर लोग उनके किसी संकलन के संबंध में पूछते। पर, संकलन विशेष नहीं होने के कारण रामविलास शर्मा जी की बातों का स्मरणकर अर्थाभाव में भी मैंने उक्त अपना प्रथम संकलन प्रकाशित करवाया। हम दोनों भाइयों के अलावा मेरा छपरा शहर और कई विद्वान इसमें शुमार हैं।

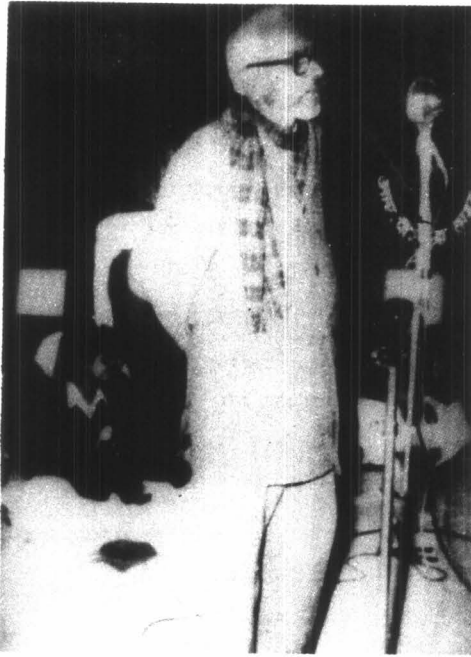
केदार जी पर लिखने का पारिश्रमिक मुझे सन् 1972 में प्राप्त हुआ। पटने में उस साल एक महासम्मेलन हुआ था जिसमें देश से ही नहीं, विदेश से भी चोटी के विद्वान एकत्र हुए थे। सम्मेलन की एक रात पटना दैनिक *जनशक्ति* के मुख्य संपादक गंगाधर दास जी ने मुझसे स्थान विशेष पर किसी मिलनातुर व्यक्ति की प्रतीक्षा करने को कहा। दासजी संयोजक मंडल में थे, अतः तीसरी बार मिलने पर उन्होंने एक ओर इशारा करते हुए कहा— 'वही आपके केदारनाथ अग्रवाल हैं।' फिर, वह अपने काम में लग गए।

हर्षातिरेक में मैं केदार जी की ओर लपका। पास पहुंचकर बताया कि मैं सांवलिया हूं। उन्होंने मुझे भींच लिया। वह प्यार मुझमें ऐसा समाया हुआ है कि मैं उसे अपनी आखिरी सांस तक याद रखूंगा। केदार जी ने क्या कहा, मुझे अक्षरशः स्मरण नहीं है। कुछ क्षण बाद जब वह सत्र में भाग लेने चले गए, मैं महासम्मेलन को भूल उस गौरांग को सुफेद कुरता और पायजामा



केदार जी द्वारा बांदा में आयोजित सम्मेलन में भाषण देती हुई
महादेवी वर्मा

फोटो : न.पु.



केदार जी द्वारा बांदा में आयोजित सम्मेलन में बोलते हुए
बाबा नागार्जुन फोटो : न.पुं.

में एक देवदूत मानकर स्मृति रसपान करने लगा। वही केदार जी से एकमात्र मिलन था मेरा और उसी अद्वितीय मिलन को मैं अपने जीवन की सार्थकता मानता हूँ। सोच के क्रम में आया कि गंगा के तट पर केन नदी उमड़ी आई है और मैं मिलन-सुख में अवगाहन करता रहा।

शिवकुमार सहाय के सौजन्य से मुझे केदार जी पर प्रकाशित साहित्य या उनका ताजा काव्य-संकलन प्राप्त होता रहा और मैं अपनी समझ के मुताबिक लिखकर दैनिक *जनशक्ति* (पटना) में प्रकाशित करवाता रहा। बांदा से यदि कोई मांग हुई तो लिख भेजा। केदार जी के जो दो-चार पत्र मुझे प्राप्त हुए, मेरी संकलित साहित्यिक सामग्रियों के साथ दीमक का आहार बन गए। अग्रज कन्हैया जी ने अपनी प्रकाशित रचनाओं की कतरनें नहीं जुगाईं। दोस्तों के कहने पर मृत्यु पूर्व जिन कुछ रचनाओं को संकलित किया था, उन्हें चोर ने अपने काम की चीज न मानकर मेनहोल में डाल दिया। उसी पीड़ा की पुनरावृत्ति हुई केदार जी आदि के पत्र गवांकर।

मानव-संबंध अद्भुत है। केदार जी की प्रिया पत्नी पार्वती जी का जब देहांत हो गया, तब प्रकाशित हुआ कि पार्वती जी सारण जिला (बिहार) के मढ़ौरा सूगर फैक्ट्री के मैनेजर बेनी माधव अग्रवाल जी की सुपुत्री थीं। मढ़ौरा थाना में कन्हैया जी का और मेरा बचपन बीता था। भैया मुझसे तीन साल बड़े थे। हम लोगों के चाचाजी अवधविहारी शरण उस ब्रिटिश शासनकाल में दरोगा थे। बहुत रौब था उनका। वह बेनीमाधव बाबू के दोस्त थे। जब भी वह छपरा शहर आते, मेरे दरवाजे पर फैक्ट्री की शानदार कार आकर लगती थी। सारण जिला का मुख्यालय होते हुए भी छपरा शहर में दो-चार मोटर गाड़ियां थीं। मोटर वालों का खूब रौब था। सामान्य लोग मोटर को 'हवाई गाड़ी' कहते थे।

पार्वती जी के देहांतोपरान्त मैंने इस संबंध के बारे में केदार जी को लिख

भेजा था। केदार जी तो अपनी 'पार्वती' से जा मिले, संयोग देखिए, कन्हैया जी की पत्नी पार्वती देवी अपनी आठ संतानों के परिवारजनों के बीच दिल्ली में कार्यरत अपने सबसे छोटे पुत्र के निवास स्थान पर विराजमान हैं।

बांदा की जिस केन नदी को एक रोज केदार जी ने उदास देखा था वह आज अवश्य बिल्कुल उदास होगी और जिस गंगातट पर केन उमड़ी आई थी, आज वह भी बिल्कुल उदास है। □

आजकल की विज्ञापन दरें

	एक निवेशन के लिए		चार निवेशन के लिए	
	रंगीन	श्वेत-श्याम	रंगीन	श्वेत-श्याम
पूरा पेज	8000	4000	25600	12800
आधा पेज	5000	2500	16000	8000
अंतिम आवरण	13000	7000	41600	22400
दूसरा अथवा				
तीसरा आवरण	11000	6000	32200	19200

तकनीकी विवरण

संपूर्ण आकार	...	21 सेंमी / 28 सेंमी
प्रिंट एरिया	...	17 सेंमी / 24 सेंमी
मुद्रण प्रक्रिया	...	आफसेट
अपेक्षित सामग्री	...	आर्टवर्क/ आर्टपुल / पाजिटिव
प्राप्ति की अंतिम तिथि	...	दो माह पूर्व

डिमांड ड्राफ्ट ' निदेशक, प्रकाशन विभाग' को देय होना चाहिए।

विज्ञापन एजेंसियों को 15 प्रतिशत एजेंसी कमीशन दिया जाएगा।

विज्ञापन सामग्री तथा भुगतान राशि भेजने के लिए संपर्क करें:

विज्ञापन व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

ईस्ट ब्लॉक-4, लेवल-7,
रामकृष्णपुरम, सेक्टर-1,
नई दिल्ली-110066

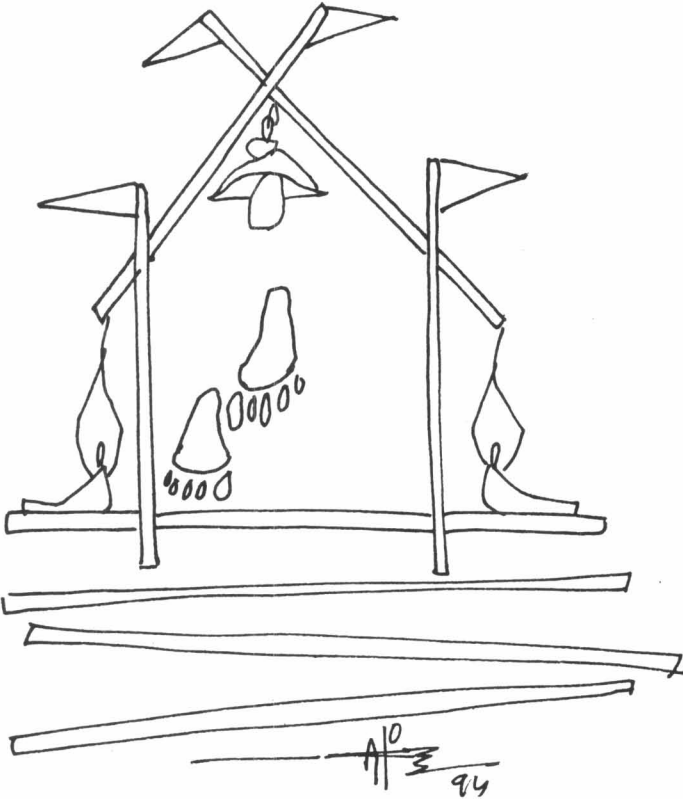
फोन : 6105590 फैक्स : 6175516 / 6193012

सेवा या स्वार्थ !

‘शबीना’

तमिल से अनुवाद : आर. जयश्री कासीकर

रेखांकन : वीरेंद्र



‘शारदा माता वृद्धाश्रम’- इस बोर्ड ने नित्या का स्वागत किया। लोहे के बड़े गेट खोलकर नित्या ने भीतर प्रवेश किया और एक ‘जर्नलिस्ट’ की दृष्टि से उस बंगले को परखा।

बी.एससी. की छात्रा नित्या एक साप्ताहिक पत्रिका के लिए ‘स्टूडेंट जर्नलिस्ट’ का काम कर रही थी।

“किससे मिलना है तुम्हें ?”

किसी की आवाज सुनकर नित्या के कदम रुक गए।

“यहां पर...कमलवल्ली जी से मिलने आई हूँ...”

“ओ...बड़ी दीदी से मिलने? अंदर जाओ वे आफिस रूम में हैं...”

नित्या आगे बढ़ी।

“मैडम! क्या मैं अंदर आ सकती हूँ?”

उसने वहां पर बैठी हुई स्त्री पर अपनी नजरें दौड़ाई- स्थूल काया, रंग गोरा, चश्मा लगा हुआ सुंदर मुखड़ा जिस पर सरस्वती का वर्चस्व स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

“अंदर आओ...!” कमलवल्ली के बुलाने पर नित्या कमरे के भीतर गई।

“नमस्ते मैडम! मेरा नाम नित्या है। मैं वारमल्लिगै पत्रिका की जर्नलिस्ट हूँ...”

“अच्छा...!...बैठो...!”

कमलवल्ली का परिवार अत्यंत धनी परिवार था। उसके पति एक रिटायर्ड आई.ए. एस. अधिकारी थे। अब वे नहीं रहे। अपनी जायदाद को व्यर्थ न जाने देकर कमलवल्ली इस तरह एक वृद्धाश्रम आरंभ करके लोगों की सेवा कर रही थी- कमलवल्ली के बारे में यह सब जानकारी नित्या को यहां आने से पहले मिल गई थी।

नित्या ने कमलवल्ली से पूछा- “क्या? इंटरव्यू शुरू करें...?”

“पहले तुम एक बार इस आश्रम को देख लो...”

कमलवल्ली के उस बंगले का विस्तार लगभग तीन हजार वर्ग फुट था। उस बंगले में एक बड़ा ‘हाल’ और दस कमरे थे। उस ‘हाल’

में एक कलर टी.वी., रखा गया था। रसोईघर विशाल था, जो रेफ्रिजरेटर, मिक्सी इत्यादि आधुनिक उपकरणों से भरा पड़ा था। एक सुंदर पूजागृह भी था। पहली मंजिल में चार कमरे थे। बंगले के चारों ओर सुंदर बगीचा था। यहां-वहां वृद्ध स्त्री-पुरुष किसी न किसी काम में जुटे हुए दिखाई दे रहे थे। कमलवल्ली का अब यही बंगला 'आश्रम' बन गया था।

इन सबको देखकर नित्या को आश्चर्य हुआ। उसने उस आश्रम में रहने वाले कुछ स्त्री-पुरुषों से 'इंटरव्यू' किया।

चौं सठ वर्षीय रंगनाथन के कुल नौ संतान थीं—छह बेटे और चार बेटियां। उनकी पत्नी का देहांत हो गया था। उनका कोई पुत्र या पुत्री उनकी देखभाल करने को तैयार न था। इसलिए वे अपनी 'पेंशन' की रकम लेकर यहां पर आकर रहने लगे थे।

सत्तर वर्षीय सुंदरम्मा ने अपना दुखड़ा कुछ इस प्रकार सुनाया— 'बाहर किसी से मत कहना बेटी! सरकारी विभाग में जो बड़ा चीफ इंजीनियर है न— मदन गोपाल— वही मेरा इकलौता बेटा है। अपने बेटे को बहू के हाथों सौंपकर यहां आकर रहने वाली 'भाग्यशाली' मैं हूँ।

एक और आश्रमवासी साठ वर्षीय कुलशेखर के दो पैर बेकार थे। अपनी जायदाद को अपने बेटों के नाम न करने के कारण उन दो बेटों ने उनकी दोनों टांगें तोड़ डाली थीं।

इस तरह के लगभग साठ वृद्धों के लिए अब कमलवल्ली ही एकमात्र सहारा बनी हुई थी। उनकी सेवा तथा त्यागशीलता की दाद देनी ही पड़ेगी। ये सभी लोग उसके इस ऋण को किस प्रकार चुका पाएंगे— नित्या सोचने लगी।

"आओ बेटी...कमरे में बैठकर बातचीत करेंगे...!" कमलवल्ली की आवाज सुनकर नित्या की विचार-तंद्रा टूट गई।

आफिस रूम के बाजू में कमलवल्ली का कमरा था। गरम 'काफी' के साथ इंटरव्यू शुरू हुआ। टेपरिकार्डर आन हुआ। कमलवल्ली ने अपने बारे में बताना शुरू किया—

"हमारा परिवार एक धनी परिवार है। मेरे पति एक आई.ए.एस. अधिकारी थे। अब वे नहीं रहे। मेरा एक बेटा और दो बेटियां अब अमेरिका

में ऊंची स्थिति में हैं। समाज के लिए कुछ सेवा करने की अभिलाषा से मैंने इस वृद्धाश्रम को आरंभ किया है।"

टेपरिकार्डर चल रहा था।

"मैडम...! प्रेम और सहानुभूति से वंचित इन लोगों की सेवा करने का यह विचार आपको क्यों और कैसे आया...? आपके मन में इनके प्रति इतनी सहानुभूति, इतनी दया उठने के क्या कारण हैं...?" नित्या ने प्रश्न किया।

कमलवल्ली नित्या की ओर देखते हुए कुछ क्षण मौन रही। उसकी आंखों में आंसू भर आए। उसने टेपरिकार्डर बंद कर दिया। अपने दुख को अति कठिनाई से रोकते हुए उसने कहा—

"इसका कारण है मेरा स्वार्थ...।"

"स्वार्थ...? कैसा स्वार्थ...? इतनी बड़ी संपत्ति की मालिक होकर आपका इसमें किस प्रकार का स्वार्थ हो सकता है...?"

कमलवल्ली के मुख पर एक सूखी मुस्कान दिखाई पड़ी। अपनी आंखों के आंसू पोंछते हुए उसने कहा—

"तुम अभी बहुत छोटी हो, इसलिए ऐसा पूछ रही हो। मेरा अनुभव है कि जीवन संपत्ति, जायदाद से ही नहीं बन सकता। धन, दौलत कुछ उम्र तक ही हमारा साथ देते हैं। उम्र जब बढ़ती है तो मनुष्य के लिए धन-संपत्ति नहीं प्रेम, अनुराग, सहानुभूति की अधिक जरूरत होती है। जीवन के संध्याकाल में यह भावना मानव के मन में न हो कि 'मेरा कोई नहीं है'। उस अवस्था में अकेलापन की अनुभूति न हो।"

नित्या कमलवल्ली की इन बातों का अर्थ समझ न पाई। उसने पूछा—

"आप यह क्या कह रही हैं मैडम...?"

"नित्या...! तुम अपनी पत्रिका में मेरे बारे में मेरी प्रशंसा करते हुए लिखोगी कि मैं एक त्यागशील नारी हूँ, 'सेवा परायण हूँ। परंतु..."

"परंतु...?"

"नित्या...! वास्तव में मेरा इंटरव्यू तो कभी का पूरा हो गया। इसलिए मैंने टेपरिकार्डर को आफ कर दिया है। अब जो कुछ मैं कहने जा रही हूँ, उसे तुम अपने मन में ही रख लो...आखिर मुझे भी किसी से कुछ कहना तो होगा...।"

कुछ देर मौन रहने के बाद कमलवल्ली ने फिर कहना शुरू किया—

“यह दुनिया समझती है कि मैं एक बड़ी सेवानिरत स्त्री हूँ, परंतु सच क्या है— अब मैं तुम्हें बताती हूँ। मेरा बेटा और मेरी दो बेटियां अमेरिका जाने के बाद अपनी इस मां को याद भी नहीं करते। यहां तक कि पत्र-व्यवहार भी नहीं करते। वे कहते हैं कि— 'हमें तुम्हारी और तुम्हारी जायदाद की कोई जरूरत नहीं है।' मेरे बेटे ने यहां तक कह दिया कि 'तुम मेरे लिए नहीं के बराबर हो...।' उन लोगों को देखे कई साल बीत गए हैं।"

"आखिर इन सबका कारण क्या है मैडम?"

"कारण जो भी हो...जन्म देकर पालन-पोषण करके बड़ा बनाकर, ऊंची स्थिति तक लाने वाली मां को ही जब ठुकराया जाए तो उसका कारण लेकर क्या करें...? उस दिन से मेरे जीवन में जो अकेलेपन का डर, मन में प्रेम व ममता के लिए प्यास है— इसके बारे में क्या कहूँ? मेरे रिश्तेदारों की आंखें तो मेरी संपत्ति पर थीं। ऐसी परिस्थिति में मैंने स्वयं किसी एक वृद्धाश्रम में रहने का विचार किया। उसी समय मुझे यह विचार आया...।"

कुछ क्षणों के लिए रुककर कमलवल्ली आगे कहने लगी—

"मैंने सोचा कि मेरे किसी शरणालय जाने से मेरे पति के गौरव और मर्यादा को कहीं चोट न लगे। मेरा दुख, पारिवारिक बलहीनता बाहर वालों को मालूम न हो, इस विचार से मैंने स्वयं अपने अकेलेपन के डर को मिटाने के लिए अनाथशरणालय न जाकर, अनाथालय को अपने पास बुला लिया है। हां...यह मेरा स्वार्थ ही है। अब देखो! सारा संसार मुझे एक त्यागमूर्ति, सेवापरायण कहकर मेरी प्रशंसा कर रही है। परंतु इसमें स्वार्थ ही स्वार्थ है। वास्तव में इन सब वृद्ध लोगों की मैं रक्षा नहीं कर रही हूँ...मैं उनकी शरण में हूँ। वे ही मेरे रक्षक हैं, मेरे रिश्तेदार हैं। अकेलेपन का डर अब मिट गया...अब मेरा एक बहुत बड़ा परिवार बन गया है...।"

नित्या अवाक् रह गई। वह सोचने लगी कि ऐसा भी कोई दृष्टिकोण हो सकता है! ऐसा भी कोई स्वार्थ हो सकता है...! □

व्यक्ति स्थापना का प्रयास

राजेंद्र गौतम

नवगीत-कविता आज गरीब की वह जोरू है, जिसे भाभी बनाना सभी के लिए सरल है। इसकी विडंबना यह है कि हिंदी कविता की समकालीन धारा में इसे स्वीकृति देने के लिए आलोचना के चौधरी और विश्वविद्यालयों के ठेकेदार भले ही तैयार न हों पर नवगीतकार हैं कि कभी तो इसके बाप-दादा बनने का हक मांगने के लिए लट्टम्-लट्टा होने लगते हैं, तो कभी इसकी परवरिश के यश के लिए तनातनी शुरू हो जाती है। एक आचार्य इसे 'स्यूडो कविता' कहकर इसे पाठ्यक्रम से सदैव के लिए बहिष्कृत करने की घोषणा करते हैं और कुछ संपादकगण हैं कि बिना कहीं सौदा तय किए 'छात्रोपयोगी' नवगीत संकलन छाप बैठते हैं।

डा. शंभुनाथ सिंह ने 1984-87 के बीच अपने कुछ लेखों और पत्रों में एक जुमला छोड़ा था- 'फेक नवगीत और जेनुइन नवगीत' का। उन्हें क्या मालूम था कि उनके स्वर्गीय होने के बाद उन्हीं के संपादकत्व में 'फेक' नवगीत संकलन भी छपेंगे। इधर *नवगीत सप्तक* नामक ऐसा ही संकलन अपने दूसरे जन्म के साथ अवतरित हुआ है। इसका पहला जन्म अज्ञात कारणों से इसकी गुमनामी का रहा। अब सजिल्द संस्करण के साथ बिना किसी पाठ्यक्रम में निर्धारित हुए इसका छात्र-संस्करण भी प्रकाशित हुआ है।

न जाने इस पुस्तक के योजनाकारों में कौन-सी उलझन एवं आशंकाएं थीं कि इसके आवरण पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक स्पष्टीकरण का स्वर प्रधान है। इस स्वर की प्रधानता के पीछे कौन-सा अपराध बोध है, इसका विश्लेषण रोचक है।

आवरण पृष्ठ पर इतनी ही सूचना है- 'नवगीत सप्तक- संपादक शंभुनाथ सिंह'। प्रथम पृष्ठ पर स्वर बदला हुआ है। अब पुस्तक के नाम के साथ बल देकर कहा गया है- 'डा. शंभुनाथ सिंह द्वारा संपादित' अर्थात् 'मेहमान भी यही हैं और चादर भी इन्हीं की है।' पर योजनाकारों को लगा कि अब भी कुछ और कहना बाकी है। नीचे लिखा गया- 'निराला से उद्भ्रांत तक बीसवीं सदी के सात प्रतिनिधि नवगीतकारों का प्रामाणिक समवेत संकलन'। यह सही है कि यह बीसवीं सदी के नवगीतकारों का संकलन है। यों भी उन्नीसवीं सदी में नवगीतकार शायद नहीं थे। यह भी सच है कि यह एक समवेत संकलन है, पर यह प्रामाणिकता का दावा कैसा? क्योंकि शंभुनाथ

सिंह की दृष्टि में प्रतिनिधि नवगीतकारों के चुनाव में गुलाब सिंह अनुपस्थित हों, यह अविश्वसनीय है; वहां माहेश्वर तिवारी के बिना शंभुनाथ जी नवगीतकारों की कोई सूची बना सकते थे, ऐसी गप्प कभी सुनी नहीं। शिव बहादुर सिंह भदौरिया के गीतों के बिना उनकी प्रतिनिधि नवगीत-पुस्तक कैसे संभव हुई? फिर *नवगीत अर्धशती* और *नवगीत दशकों* के बाद प्रतिनिधि नवगीतकारों की 'शॉर्ट लिस्टिंग' को उन्होंने सभी गीतकारों से इतना गोपनीय क्यों रखा कि उनकी मृत्यु तक उनके निकटतम कवियों को इसकी कोई जानकारी नहीं। रोज-रोज जिनसे पत्राचार था, उनसे इसका रहस्योद्घाटन नहीं। शंभुनाथ जी नवगीत के प्रचार-प्रसार में सैनिकों की तरह सन्नद्ध जिस मंडल को वे साथ लिए नगर-नगर घूम रहे थे, उनसे इसके दुराव का लक्ष्य क्या हो सकता है?

पर ये सारे प्रश्न तो बाद के हैं। पहले पूर्व घोषणा को फिर पढ़ें। आरंभ पर एतराज करना तो निश्चित रूप से बहुत मुश्किल है, इसलिए घोषणा में 'से' तो ठीक है पर 'तक' का ठौर-ठिकाना क्या हुआ? उद्भ्रांत की पीढ़ी नवगीत की कौन-सी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है? उन्हें किस रूप में कोई प्रस्थान बिंदु या समापन बिंदु माना जा सकता है? प्रथम संस्करण के प्रकाशन का दावा 1989 का है। स्वयं उद्भ्रांत के अनुसार वह सातवें दशक के नवगीतकार हैं। तब 89 में प्रकाशित पुस्तक का यह अंत कैसा? निराला से चलकर नवगीत उद्भ्रांत तक ही पहुंचा है, तब तो उद्भ्रांत जी नवें दशक के नवगीतकार हुए अन्यथा यदि शंभुनाथ जी 89 में इस धारा के अद्यतन प्रतिनिधि हस्ताक्षर को चुनते तो वह कहीं यश मालवीय या उनका समकक्ष कोई कवि होता। 1964-65 में हिंदी नवगीत में पूर्णतः स्थापित हो जाने वाले पंद्रह वर्षीय उद्भ्रांत जी पर आकर शंभुनाथ जी नवगीत की प्रतिनिधि-यात्रा को रोकने की भूल भला क्यों करते? अतएव निश्चय है; यह रासो काव्य परंपरा का एक और प्रक्षेप-प्रसंग है।

पहले पन्ने से ही उठे इस संदेह के निवारण के लिए पाठक कहां जाए? चार कवि तो स्वर्गीय हैं, एक उद्भ्रांत जी हैं। उनकी भूमिका पर जरूर इन प्रश्नों के उत्तर का जिम्मा रहेगा। रही बात ओम प्रभाकर और नईम की। *पुष्पचपरित* लिखने के बाद प्रभाकर जी ने नवगीत से अपने को पूर्णतः काट लिया है। उपलब्धियों का पुण्य अनायास उन्हें आज तक मिलता रहा है। अब कोई उनके पूर्व-प्रकाशित गीतों या वक्तव्यों को अन्यत्र प्रकाशित कर लेता है तो उन्हें तो अतिरिक्त पुण्य ही अर्जित हो रहा है, उन्हें क्या आपत्ति! नईम ने आज तक न अपने परिचय में कहीं 'नवगीत सप्तक' में संकलित

नवगीत सप्तक : संपादक : डा. शंभुनाथ सिंह; जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली-10; पृष्ठ संख्या : 124; मूल्य : 125 रुपये

होने का उल्लेख किया और न अपने दिल्ली या मालवा के नवगीतकार मित्रों से इस प्रकार के किसी संकलन में होने का संकेत दिया।

मजे की बात यह है कि शंभुनाथ जी की भूमिका से लेकर कवियों के आत्मवक्तव्यों तक इस संकलन में कुछ भी प्रथमतः प्रकाशित नहीं। ये सभी वक्तव्य तो पूर्व संग्रहों में प्रकाशित हैं ही, कवियों पर प्रकाशित अनेक टिप्पणियां भी पूर्व प्रकाशित हैं। यदि किसी नई चीज से पहली बार पाठक परिचित होता है तो वह है – उद्भ्रांत की 'नवगीत सप्तक का नया संस्करण' नामक भूमिका। अर्थात् समूची पुस्तक की सामग्री योजनाबद्ध रूप से पूर्व प्रतिनिधि संकलनों से कतरने लेकर सुविधानुसार समायोजित की गई है और इसे 'डा. शंभुनाथ सिंह की नवगीत विषयक महत्वाकांक्षी योजना का सर्वोच्च सोपान' बताया गया है। पूर्व कवियों की अनुपस्थिति के बावजूद और नवगीत दशक तथा नवगीत अर्द्धशती की उपस्थिति के बावजूद इस अप्रामाणिक संकलन को शंभुनाथ जी की योजना का सर्वोच्च सोपान बताना शंभुनाथ जी को बहुत छोटा करना है।

उद्भ्रांत जी की पूर्वोक्त भूमिका धीरे-धीरे रहस्यों को खोलती है। एक ओर यह शंभुनाथ जी की 'सर्वोच्च महत्वाकांक्षी योजना' है, दूसरी ओर उद्भ्रांत लिखते हैं – 'नवगीत सप्तक का मूल विचार तो मेरा ही था।' यह भूमिका नवगीत का कोई तात्त्विक विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करती अपितु पूरी भूमिका एक स्पष्टीकरण मात्र है और इस स्पष्टीकरण के कारण का उल्लेख हम पहले कर आए हैं। ये स्पष्टीकरण आत्मश्लाघा और आत्मस्थापना से ज्यादा जुड़े हैं, नवगीत की स्थापना से कम। कई बार इसी बात पर बल है कि उन्होंने ग्यारह वर्ष की अवस्था में धाराप्रवाह लिखना शुरू कर दिया था और पंद्रह वर्ष की अवस्था में वह प्रतिष्ठित नवगीतकार बन चुके थे। इसलिए नवगीत दशक योजना में उनके नाम के छूट जाने को वह एक साहित्यिक क्षति के रूप में स्थापित करते हैं। इतनी लंबी साहित्यिक यात्रा के आधार पर उनका दावा है कि उनका स्थान नवगीत दशक के पहले ही खंड में था। पूरी भूमिका (26 पृष्ठ) में जिस रूप में इस आग्रह पर बल दिया गया है, उससे लगता है कि शंभुनाथ जी ने इसी अपराध के परिमार्जन के लिए नवगीत सप्तक संपादित किया होगा। भूमिका में आत्मश्लाघा का झरना जब फूट पड़ता है तो रुकता नहीं और तब तथ्यों की अनदेखी स्वाभाविक हो जाती है। वीरेंद्र मिश्र का अविराम चल मधुवंती संग्रह 1968 की अपेक्षा 1965 में प्रकाशित बतला दिया जाता है। लखनऊ में नवगीत दशक-3 के लोकार्पण समारोह में महादेवी जी की उपस्थिति में कवियों ने एक-एक गीत पढ़ा था पर उद्भ्रांत जी का दावा अनेक गीतों के सस्वर पाठ का है। तीनों नवगीत दशकों के समारोह क्रमशः दिल्ली, भोपाल और लखनऊ में हुए, वाराणसी और बंबई में नहीं। नवगीत दशक सहयोग राशि से प्रकाशित नहीं हुए। लखनऊ-समारोह में तीसरे दशक के कुछेक नहीं, विजय किशोर मानव को छोड़कर सभी कवि उपस्थित थे।

शंभुनाथ जी ने नवगीत को कभी आंदोलन स्वीकार नहीं किया, बल्कि ऐसा मानने का अनेक बार विरोध किया। तब क्या यह संभव था कि उनके नवगीत के 'प्रतिनिधि संकलन' के उपस्थापन में नवगीत को एक आंदोलन घोषित किया जाए। उद्भ्रांत जी ने नवगीत दशक योजना से न जुड़ पाने के जो कारण दिए हैं, उनमें एक यह है कि शंभुनाथ जी चाहते थे कि वह

उनके पास पच्चीस गीत भेजें, जिनमें से दस को चुन लिया जाएगा पर उद्भ्रांत जी का स्वाभिमान इसे स्वीकार नहीं कर सकता था और वे उतने ही गीत भेज सकते थे, जितने प्रकाशनार्थ चाहिए पर 'नवगीत सप्तक' के प्रकाशन के संदर्भ में उनके व्यक्तित्व में कौन-सा परिवर्तन घटित हुआ कि वह लिखते हैं – 'मेरी किताबें हिरन कस्तूरी और देह चांदनी उनके पास थी ही, जिनमें से सात नवगीतों का चयन कर और उनका क्रम निर्धारित करते हुए उन्होंने मुझे कड़ा निर्देश भी दिया कि 'आपके ये ही गीत संकलन में रहेंगे-आप अपनी ओर से कोई बदलाव नहीं करेंगे।'

डा. शंभुनाथ सिंह यदि किसी 'छात्रोपयोगी' नवगीत-संकलन का संपादन कर रहे हों तो यह अविश्वसनीय लगता है कि उन जैसा प्रबुद्ध वरिष्ठ कवि निराला के साहित्यिक वैशिष्ट्य पर तो बीस पंक्तियों में टिप्पणी लिखेगा और उद्भ्रांत पर पचास पंक्तियों में और नईम या देवेंद्र कुमार को पंद्रह-पंद्रह पंक्तियों में समेट देगा। विवेक का- अनुपातहीनता का- ऐसा परिचय भला शंभुनाथ जी को क्यों देते और तब भी क्या वे इसके 'प्रतिनिधि प्रामाणिक' संकलन का दावा कर पाते! स्पष्टतः 1999 में किसी नवगीत सप्तक नामक पुस्तक के प्रकाशन के तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता पर पूरी पुस्तक पढ़ने के बाद एकमात्र तथ्य यही उभरकर आता है कि यह आयोजन का संपादन-कर्म डा. शंभुनाथ सिंह का नहीं हो सकता। इसके लिए उनके नाम के 'उपयोग' की अनुमति ले ली गई हो तो बात दूसरी है पर उद्भ्रांत जी द्वारा आयोजित एवं संपादित इस संकलन को प्रतिनिधि एवं प्रामाणिक नवगीत संकलन मानना या मनवाना पाठकों के साथ बहुत बड़ा छल होगा। इस पुस्तक में हमें निराला, शंभुनाथ सिंह, नईम आदि के पूर्व प्रकाशित कुछ गीत एक बार फिर पढ़ने को मिल जाते हैं- यही इस संकलन की एकमात्र उपयोगिता है।

बहरहाल, संपादकीय संदिग्धता के बावजूद एक पुस्तक के रूप में नवगीत सप्तक की उपस्थिति है ही। अतएव यहां संग्रहीत रचनाओं का जायजा लेना उचित होगा। उद्भ्रांत, ओम प्रभाकर, ठाकुर प्रसाद सिंह, देवेंद्र कुमार, नईम, शंभुनाथ सिंह और 'निराला' के सात-सात गीत संग्रहीत हैं। इनमें अधिकांश कवि गत तीस वर्षों में नवगीत के सभी प्रतिनिधि संकलनों में स्थान पाते रहे हैं। नवगीत का अबाध प्रवाह तो सन् 60 के आस-पास से शुरू होता है पर इसकी वस्तुपरक समष्टि-उन्मुखी प्रवृत्ति का उन्मेष 'निराला' के अर्चना और आराधना के गीतों में हो गया था। नवगीत सप्तक में निराला की ऐसी परवर्ती कालीन रचनाएं संकलित हैं। नवगीत पर विभावहीन भावुकता का आरोप लगाने वाले आलोचकों को निराला के ऐसे गीतों पर ध्यान देना चाहिए जो नवगीत के प्रेरणास्रोत बने हैं :

बान कूटता है/ मुंगरी लेकर सुख का/ राज लूटता है।
मुंग के फाले-छाले
अच्छे बांधों वाले
ऐसे बैठे ठाले
काज टूटता है।

शंभुनाथ सिंह नवगीत आंदोलन के एक कर्मठ संगठनकर्ता ही नहीं थे, उन्होंने आठवें-नवें दशक में प्रकाशित अपने संग्रहों जहां दर्द नीला है और वक्त की मीनार पर में जो उत्कृष्ट गीत साहित्य-जगत को दिए हैं, उनमें

से ही नवगीत सप्तक में गीत संग्रहीत किए गए हैं। शंभुनाथ जी ने एक ऐसी भाषा नवगीत को दी थी जो अपनी तद्भवता में लोक के साथ जुड़ी थी और जिसकी संवेदना आधुनिक थी एक सांस्कृतिक अस्मिता के रूप में देश की कल्पना करते हुए वह लिखते हैं :

देश हैं हम/ महज राजधानी नहीं
हम नगर थे कभी/ खंडहर हो गए
जनपदों में बिखर/ गांव घर हो गए
हम जमीं पर लिखे / आसमां के तले
एक इतिहास जीवित / कहानी नहीं

ऐसे प्रतिनिधि गीतों की आवृत्तिपरक प्रस्तुति के रूप में नवगीत सप्तक के महत्व को स्वीकारा जा सकता है। नईम के अधिकांश वही गीत यहां पर संकलित हैं, जो नवगीत दशक में हैं। गत एक दशक में नईम के अनेक ऐसे गीत प्रकाशित हुए हैं, जिनकी अटपटी भाषा ने वर्तमान विसंगतियों को अधिक प्रखरता से व्यक्त किया है परंतु सातवें दशक में उनके गीतों में लोकपरकता का स्वर प्रमुख था। इस संकलन में ऐसे ही 'गीत' अधिक हैं। निम्न पंक्तियों में इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है :

सूखे का हुआ कभी / कभी हुआ बाढ़ का
पहला दिन मेरे आषाढ़ का !
पाटों का पता नहीं, डूब गए
घाटों का पता नहीं, ऊब गए
क्या होगा तन का / इस मटमैले का
क्या होगा विष दुखती दाढ़ का !

वस्तुतः नवगीत सप्तक में पूर्वप्रकाशित संकलनों से भिन्न रचनाओं के चयन का प्रयास दिखलाई ही नहीं देता। संकलित कवियों की रचनाओं में प्रतिनिधित्व की अपेक्षा पूर्व संकलनों में उनकी उपस्थिति की सुविधा ही प्रमुखतः नजर आती है कहीं-कहीं विकल्पों की सुविधा ही नहीं थी। पूरे काव्य-जीवन में ठाकुर प्रसाद सिंह का एकमात्र काव्य-संकलन वंशी और बादल छपा है। इस संग्रह में उसी संकलन के चर्चित गीत- पांच जोड़ बांसुरी, मेरे घर के पीछे चंदन है, चलो चलें चंपागढ़ आदि ही इसमें संकलित हैं। कुल मिलाकर नवगीत सप्तक किसी नई उपलब्धि का संकेत नहीं है, कुछ प्रमुख नवगीतकारों की एक साथ उपस्थिति इसमें अवश्य उल्लेखनीय है। □

प्राप्ति सूचना

परिणति (कहानी संग्रह): नरेंद्र कोहली; क्रिएटिव बुक कंपनी, ई-4/24 ए, माडल टाउन, दिल्ली-110009; मूल्य : 50 रुपये

अंततः (कहानी संग्रह) : शैल हल्दिया; कविता प्रकाशन, 88, आर्य नगर, अलवर-301001; मूल्य : 50 रुपये

कुंठा के कैक्टस : (कहानी संग्रह) : अमरनाथ मेहरोत्रा; राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, 535/1-आर, मीरापुर, इलाहाबाद-211 003; मूल्य : 65 रुपये

परछाई नाच (उपन्यास) : प्रियंवद; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110 003; मूल्य : 120 रुपये

ओ, मेरे वसंत के वर्ष ! : (काव्य संग्रह) : अनुवाद : कुमार कौस्तुभ; संवाद प्रकाशन, आई-499, शास्त्रीनगर, मेरठ-250 005 (उ. प्र.) ; मूल्य : 150 रुपये

वेरा, उन सपनों की कथा कहो ! (काव्य संग्रह) : आलोक श्रीवास्तव; संवाद प्रकाशन, आई-499, शास्त्रीनगर, मेरठ-250 005 (उ. प्र.) ; मूल्य : 150 रुपये

दोनों नावों में (काव्य संग्रह) : बालेश्वर सिंह, प्रकाशन संस्थान, 4715/21, दयानंद मार्ग, दरिया गंज, नई दिल्ली-2; मूल्य : 80 रुपये

मत छीनो मेरे पंख (काव्य संग्रह) : मोनी शंकर; नीलेश प्रकाशन, जी-5/62, अर्जुन नगर, दिल्ली-110 051; मूल्य : 80 रुपये

बहनें अब घर में नहीं हैं : (काव्य संग्रह) : राघव चेतन राय; डा. राधेश्याम शुक्ल, प्रतिभा प्रकाशन, 29/5 शक्ति नगर, दिल्ली-110 007; मूल्य : 60 रुपये;

परिदृश्य के भीतर: (काव्य संग्रह) : कुमार मुकुल; रश्मिप्रिया प्रकाशन, मोहनपुर, न्यू पुनाईचक, पटना-800 023; मूल्य : 125 रुपये

उस देश की कथा : (काव्य संग्रह) : पंकज कुमार चौधरी; रश्मिप्रिया प्रकाशन, मोहनपुर, न्यू पुनाईचक, पटना-800023; मूल्य : 40 रुपये

दर्पण : (काव्य संग्रह) : संपादक - सुधीर कुमार सिंह; सुधीर फीचर्स, क्वा. नं. न्यू सी-2, अफसर कॉलोनी, पो.- कथारा, जिला-बोकारो-829 116; मूल्य : 100 रुपये

जुई फते हरे हो गए : (गज़ल संग्रह) : चांद 'शेरी'; विकल्प प्रकाशन, 80, प्रताप नगर, कोटा-324009; मूल्य : 50 रुपये

डूबते वक्त...: (गज़ल संग्रह) : दीक्षित दनकौरी, मोमिन मीडिया, पाकेट डी, 657, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-95; मूल्य : 100 रुपये

इस भरे बाजार में : (गज़ल संग्रह) : लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'; मिनर्व प्रेस, ए-1/304, सफदरजंग एनक्लेव, नई दिल्ली; मूल्य : 100 रुपये

एक व्यक्ति नरेंद्र कोहली : संपादक- कार्तिकेय कोहली; क्रिएटिव बुक कंपनी, ई-4/24 ए, माडल टाउन, दिल्ली-110 009; मूल्य : 80 रुपये

पतन की घोषणा : डा. मनमोहन सिंह यादव; प्रियंका प्रकाशन, उदयरामसर, बीकानेर; मूल्य : 100 रुपये

राष्ट्रीय नाक : (व्यंग्य संग्रह) : विष्णु नागर; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110 002; मूल्य : 150 रुपये

स्मृतियों के गवाक्ष : (संस्मरण) : देवकिशन राजपुरोहित; राजपुरोहित प्रकाशन, चंपाखेड़ी राजपुरोहित कुटीर, चौतीना कुंआ, बीकानेर-334 001 (राजस्थान); मूल्य : 150 रुपये

सदी की त्रासदी और भविष्य का शून्य

सदी के आखिरी दौर में कविता : संपादक : प्रकाश मनु: इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली;
पृष्ठ संख्या : 196; मूल्य : 175 रुपये।

सदी के आखिरी दौर में कविता कविता संग्रह

समीक्षा हेतु मेरे पास आने के बावजूद एक लंबे समय तक कई हाथों में घूमता रहा। इसकी कई कविताएं बार-बार पढ़ी-सुनी और सुनाई जाती रहीं और कविता और साहित्य में रुचि न रखने वाले कई लोगों ने इसे सुनने-पढ़ने के बाद अपनी यह राय बनाई कि कविताएं अच्छी चीज होती हैं और उन्हें जरूर पढ़ा जाना चाहिए। निश्चय ही किसी कविता-पुस्तक की इससे बढ़कर कोई समीक्षा नहीं हो सकती और न ही उपलब्धि, वह भी उस दौर में जब कविताओं के प्रति आम लोगों में अरुचि पैदा हो रही हो।

इसकी इस उपलब्धि के पीछे इसकी भाषा का बहुत बड़ा हाथ रहा है। सीधे-सादे शब्दों (और कम-से-कम) में बड़ी-से-बड़ी बात कह जाना इस संग्रह की कविताओं की विशिष्टता है। आज के समय में कविताओं में आई दुरुहता और वृहदाकारिता से दूर छोटी-छोटी कविताएं इस संग्रह की उपलब्धि हैं। श्याम सुशील, रमेश तैलंग, रमेश आजाद और सत्यप्रकाश बेकरार जैसे अचर्चित और कम चर्चित कवियों ने छोटी-छोटी कविताओं के माध्यम से अपना कमाल दिखाया है। 'दुख', 'डर', 'महानगर'-1, 2 (श्याम सुशील), 'बर्खास्त आदमी' (रमेश आजाद), 'रात', 'महानगर' (सत्यप्रकाश बेकरार) और 'उसकी कविता', 'बच्चे बड़े हो रहे हैं', 'ईमानदारी' (रमेश आजाद) कुछ ऐसी ही कविताएं हैं। विजयकिशोर मानव अपनी एक छोटी कविता 'खांसी' में खांसी को बुजुर्गों का रोग नहीं, उनकी भाषा मानते हैं, जिसमें वे अपने सुख-दुख, सामीप्य और सात्वनाओं को आपस में बांटते होते हैं।

इस संग्रह की सारी कविताओं की विशेषता

यह है कि इनके सारे अनुभव आपके अपने अनुभव हैं; इन कविताओं में खुद को आसानी से ढूँढा जा सकता है। एक अजीब-सा तादात्म्य है इसका मध्यवर्गीय समाज के साथ। यहां दर्द करते माथे पर रेंगता हाथ यह बताता है कि आप अपने घर में हैं (ब्रजेश कृष्ण; 'घर') तो कच्ची उम्र में बच्चों के अचानक बड़े हो जाने की पीड़ा भी (रमेश तैलंग)। महानगर में जमीन की तलाश से उपजे दर्द की त्रासदी है तो बच्चों के मासूम सवाल के आगे निरस्त पिता की त्रासदी भी (ब्रजेश कृष्ण और मनु)। वर्तमान की विडंबनाओं और भविष्य की अनिश्चितता का वहां भरपूर चित्रण है।

बड़ी अजीब-सी बात है कि बारह के बारह कवि हालात से जूझने और लड़ने की बात नहीं करते, जैसे-तैसे जिए जाने को स्वीकार करके यथास्थितिवादी बनना स्वीकारते हैं। कविताओं में कोई आशा की किरण नहीं दिख पड़ती, दर्द है और दर्द को सहते रहने की विडंबना भी। खासकर संजीव ठाकुर, हरिपाल त्यागी, विजयकिशोर मानव और प्रकाश मनु की एक कविता में यह भाव बहुत गहरे रूप में दिखता है। संजीव ठाकुर लिखते हैं— *माफ करना मित्रगण! कभी मैं दिया करता था/ हर हाल में जिंदा रहने का उपदेश / मैं अपना उपदेश वापस लेता हूँ / अब मैं आत्महत्या को कायरता नहीं मानता।*

समझ में नहीं आता, कवि इस कविता के द्वारा क्या संदेश देना चाहता है। निराशा और मरणधर्मिता इन कवियों के काव्य में आकर क्या दुख में जूझते मनुष्यों का संकल्प नहीं तोड़ती? कविता हमारी जीवनशक्ति होती है, बुरे समय में भी सपनों और आकांक्षाओं को जिंदा रखने की जिद! पर इन कविताओं से यही मुख्य तत्त्व

गायब है। बारह कवियों की लगभग 120 से भी अधिक कविताओं में सिर्फ दो कविताएं ढूँढकर निकलती हैं जिनमें कहीं आस्था जीवित है। वे हैं— प्रकाश मनु की 'मैं अभी नहीं मरूंगा' और सत्यप्रकाश बेकरार की 'रात', जहां पहाड़ी के पीछे कीचड़ में धंसते निर्बल सूरज को मिल-जुलकर खींच लाने की बात है। क्योंकि उन्हें यह विश्वास है कि — *सुबह उगाई जाती है, हर बात बनाई जाती है।* आश्चर्य है, अन्य कवि ऐसा क्यों नहीं सोचते!

लंबी कविताओं में महावीर सरवर की 'छोटा मसीहा', 'जन्मदिन', मानव की 'राजा को सब क्षमा है', 'संबंध', हरिपाल त्यागी की 'आत्म-संबोधन', 'बासठ पार का कवि', संजीव ठाकुर की 'इस साज पर गायन नहीं जाता', 'त्रिताल', 'दीपावली 96', और प्रकाश मनु की कविताएं अच्छी बन पड़ी हैं। इनमें से कुछ कविताओं में लंबी कविताओं में पाई जाने वाली बौद्धिकता और नीरसता नहीं है, जो इनका सबल पक्ष है। 'मनु' और 'मानव' की चर्चा अगर छोड़ दी जाए, (चूंकि ये लंबे अर्से से कवि के रूप में चर्चित हैं) तो हरिपाल त्यागी और संजीव ठाकुर की कविताएं समकालीन कविताओं की तरह कुछ बौद्धिकता लिए हुए हैं और संजीव की कविताओं में कुछ प्रयोगधर्मिता भी है (मसलन राग और ताल के ज्ञान का समावेश) जो इन्हें संकलन की कविताओं से थोड़ा अलग, थोड़ा समृद्ध तो बनाती है पर उनकी सर्वग्राह्यता को कम भी करती है।

नए कवियों को एक मंच पर लाकर उनकी प्रतिभा से परिचित करवाने की मनु की प्रतिबद्धता स्वागत योग्य और सराहनीय है जिससे हम बहुत सारे कवियों से एक साथ परिचित हो सके। इसके लिए मनु धन्यवाद के पात्र हैं!

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह कविता संग्रह वर्तमान सदी की त्रासदी और भविष्य के शून्य का चित्रण है जो कहता है— *यह जो सामने है/ गहरी-सी अंधेरी-सी/ विकराल गुफा / निश्चित ही यह मंजिल तो नहीं थी ... । ... पीछे भी/ धुंधला गए हैं राहों के निशान/ क्या बताएं कि कहां से रास्ता भूतें।* ('गुफा के मुहाने पर कविता' : सत्यप्रकाश बेकरार)।

—कविता

नॉमिनी

पृष्ठ 23 से आगे

हथियार है। तुम एक साहसी पुरुष हो। स्थिति का सामना करो। मैं नहीं समझती... कोई गुनाह कर रही हूँ। मेरे मन में न आत्मग्लानि है, न अपराधबोध। जिस आनंद को मैं भोग सकती हूँ... उससे वंचित रहूँ?... क्यों? प्रकृति या तुम्हारे भगवान ने मानव शरीर दिया है कर्म और काम... दोनों की उपयोगिता के लिए। 'कर्म' अब तक करती रही और 'काम' का ज्ञान मुझे अब हुआ। तुम्हें शायद मेरा तर्क पसंद न आए... मगर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। निर्णय तुम्हें स्वयं लेना है... एक बात और... अब तक जोसफ तुम्हारे पीछे आता था... आज से यह तुम्हारी उपस्थिति में यहाँ आएगा... तुम चाहो तो इस कमरे में सो सकते हो... बैडरूम में हमारे साथ भी रहो तो हमें कोई ऐतराज नहीं होगा...।"

'उस दिन से जोसफ हमारे बीच उपस्थित हो गया। अपनी आंखों के सामने राजी को जोसफ के साथ देखता और सब कुछ बदरित करने के लिए विवश... कैसी विकट घड़ी होती थी वह...। पांडु रोगी थे, साथ ही शापित... पुत्र कामना हेतु कुंती और माद्री को पवन, इंद्र आदि के पास नियोग हेतु भेजना उनकी मजबूरी थी। मैं न रोगी था, न शापित और न संतान की कोई चाह! फिर भी इस संबंध को स्वीकार किया... क्यों... शायद झूठी प्रतिष्ठा... झूठी शान... समाज में कोई उंगली न उठाए... मेरी नामर्दा उजागर न हो... हमारे घर 'तलाक' का धब्बा न लगे... काश...!

वहाँ से बंगलौर आ गया। सोचा... जोसफ से पीछा छूटा...। कुछ दिनों पश्चात् उसने भी अपना स्थानांतरण वायु सेना स्टेशन जल्लाहल्ली में करा लिया। मेरे कार्यालय का समय सुबह नौ बजे से शाम पांच बजे तक था। उनके लिए यह अधिक सुविधाजनक स्थिति थी। मेरी उपस्थिति यों भी उनके क्रियाकलाप में बाधक नहीं थी, पर एक नासूर की तरह चुभती अवश्य थी। कांटा कभी भी सुख नहीं देता... उसे निकाल फेंकने में ही अकलमंदी है और वह समय शीघ्र आ गया...।

मुझे अपने डिस्चार्ज पेपर भेजने थे। उसके एक कालम में पति-पत्नी के संयुक्त फोटोग्राफ चिपकाने की आवश्यकता थी। मैंने राजी से फोटो खिंचवाने के लिए कहा तो उसका जवाब था-

"एस. बी.। तुम्हारे साथ फोटो खिंचवाने में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं। तुम भले ही मुझे अपनी पत्नी मानते होगे पर मैं जोसफ को अपना पुरुष स्वीकार कर चुकी हूँ। सच पूछो तो पति-पत्नी का रिश्ता भी महत्वपूर्ण नहीं रहा मेरे लिए... मैं इन संबंधों से ऊपर आ चुकी हूँ। तुम... तुम हो और मैं... मैं... फिर संयुक्त तस्वीर का क्या महत्व? आज का युग (पूरी तरह कामर्शियल) हो चुका है... व्यक्ति... पुरुष या पति से अधिक जरूरी है पैसा...। यदि तुम्हें मेरे साथ फोटो खिंचवाने का इतना ही शौक है तो एक लाख रुपये मुझे दो... रुपये तुम्हारे पास हैं, मैं जानती हूँ... मेरा विश्वास करो...। पैसे मिलने के बाद मैं अस्वीकार नहीं करूंगी...।"

और यही वक्त था जब मैं अपना बनाया घर छोड़ मैस में रहने के लिए बाध्य हो गया।

'श्रीमान्! मैं एक गरीब एयरमैन हूँ। मेरे पास इतने पैसे नहीं, जो उसे देकर फोटो (खिंचवाऊँ)... और होते भी तो क्या जरूरत है इस फोटोग्राफ

की! यह तस्वीर उसके भविष्य के लिए थी न कि मेरे...। मृत्यु के बाद मेरे लिए न तो पैसे का कोई महत्व है न उस व्यक्ति का जो मेरा 'नॉमिनी' है। मेरा उसके साथ तलाक नहीं हुआ है। पत्नी के कालम में 'राजी' का नाम दर्ज है, पर इस नाम की सार्थकता समाप्त हो चुकी है। भारतीय समाज में पत्नी की जो मान्यता है... वह उसे तोड़कर एक नई, मान्यता का प्रारूप तैयार कर रही है। मैं नहीं जानता... नया समाज... विशेषकर इक्कीसवीं सदी इस मान्यता को स्वीकार करेगी या नहीं... जबकि पश्चिम सभी के मन-मस्तिष्क में बुरी तरह अपना स्थान बना रहा है। मैं अपनी परंपराओं और संस्कारों की बेड़ियों में जकड़ा हुआ हूँ और उन्हें तोड़ पाना संभव नहीं हो पा रहा है। अतः मैं सिर्फ अपनी तस्वीर चिपकाकर पुनः आपके पास भेज रहा हूँ।

हां! अब मैं अपना 'नॉमिनी' देश के प्रधानमंत्री को घोषित करता हूँ। मेरे मरणोपरांत मेरी संपत्ति प्रधानमंत्री सहायता कोश में जमा करा दी जाए।' □

सहयोगी रचनाकार

विष्णु पन्नाकर : 818, कुंडेवाला चौक, अजमेरी गेट, दिल्ली-110 006

अरविंद त्रिपाठी : 4, सफरदरवाजा लेन, नई दिल्ली-110 011

रामकृष्ण पाण्डेय : यूनीवार्ता, 9 रफी मार्ग, नई दिल्ली-110 001

शत्रुघ्न सिंह 'अनाम' : सिगनल सेक्शन, 16 विंग, वायुसेना, मार्फत 99 ए.पी.ओ.

मधुर शारदा : एस-484-ए, विवेक मार्ग, स्कूल ब्लाक, शकरपुर, दिल्ली-110 092

दुर्गा प्रसाद गुप्ता : आई.-227, अंसारी नगर (पश्चिम), नई दिल्ली-110 029

अंशु मालवीय : ए-111, चंद्रशेखर आजाद नगर (मैंहदौरी कालोनी), तैतियागंज, इलाहाबाद- 211 004

मृत्युंजय मिश्र 'करुणेश' : 6/209, हनुमान नगर, कंकड़बाग, पटना-800 020

आनंद स्वस्वप श्रीवास्तव : एम. II/85, जवाहर विहार, सुलतानपुर रोड, रायबरेली-229 010

अशोक पियबर्ही : नीचे करमटोली, रांची-834 008

आचार्य सारथी : 1/5786, बलबीर नगर चौक, शाहदरा, दिल्ली-110 032

नरेंद्र पुंडरीक : छाबी तालाब, बांदा-210 001

राजेश कुमार गुप्त 'गुड्डू' : 485/90 ए/59 जी., शिवाजी नगर, बाघंबरी गद्दी, अलापुर, इलाहाबाद-211 006

सांवलिया बिहारी धरण : मोहन नगर, छपरा-841 301

शबीना : 91-ए, सोलाईअप्पन स्ट्रीट, कुंभकोनम-612 001

आरज्यश्री कासीकर : 137-4ए, 'श्री अच्युत', पहली रोड, एस. के. डी. नगर, अदोनी-518 301

राजेंद्र गौतम : बी-226, राजनगर, पालम, नई दिल्ली-110 045

कविता : द्वारा राकेश बिहारी, थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड, बी-11/12, एन. ई. पी. जेड., नौएडा-201 305

Information is Power : Be Informed.

Read YOJANA

A monthly journal, the only one of its kind, covering the whole gamut of development, socio-economic issues and current affairs.

Published in Assamese, Bengali, English, Gujarati, Hindi, Kannada, Malayalam, Marathi, Oriya, Punjabi, Tamil, Telugu and Urdu - reaching out to people country-wide.

Join the ranks of 5,00,000 discerning readers who opt for YOJANA.

YOJANA has incisive, authentic and well researched articles written by experts.

Have a cutting edge, be ahead of others. Subscribe today.

Subscription Rates : 1 Yr. - Rs.70/-; 2 Yrs. - Rs.135/-; 3 Yrs. - Rs.190/-.

Subscription by DD / MO / IPO in the name of Director, Publications Division, can be sent to :

**The Advertisement & Circulation Manager, Publications Division,
East Block-IV, Level-VII, R.K. Puram, New Delhi-110066.
Tel. 6105590; Fax: 6175516 / 6193012.**

Subscriptions will also be accepted at our sales emporia:

- Patiala House, Tilak Marg, New Delhi, Ph. 011-3387983;
- Super Bazar, Connaught Circus, New Delhi, Ph. 011-3313308;
- Hall No.196, Old Secretariat, Delhi, Ph. 011-3968906;
- Rajaji Bhavan, Besant Nagar, Chennai, Ph. 044-4917673;
- 8, Esplanade East, Calcutta, Ph. 033-2488030;
- Bihar State Cooperative Building, Ashoka Rajpath, Patna, Ph. 0612-653823;
- Press Road, Thiruvananthapuram, Ph. 0471-330650;
- 27/6, Ram Mohan Rai Marg, Lucknow, Ph. 0522-208004;
- Commerce House, Currimbhoy Road, Ballard Pier, Mumbai, Ph. 022-2610081;
- State Archaeological Museum Building, Public Gardens, Hyderabad, Ph. 040-236393;
- 1st Floor, F-Wing, Kendriya Sadan, Koramangala, Bangalore, Ph. 080-5537244;
- C.G.O. Bhavan, 'A' Wing, A.B. Road, Indore;
- 80, Malviya Nagar, Bhopal;
- B-7/B, Bhawani Singh Road, Jaipur.

For Yojana Tamil, Telugu, Malayalam, Kannada, Gujarati, Marathi, Bengali and Assamese, please enrol yourself with Editors of the respective magazines at the addresses given below:

Editor, Yojana (Marathi), Room No.38, 4th Floor, Yusuf Building, Veer Nariman Road, Mumbai, Ph. 022-2040461;

Editor, Yojana (Gujarati), Ambika Complex, 1st Floor, Above UCO Bank, Paldi, Ahmedabad, Ph. 079-6638670;

Editor, Yojana (Assamese), Naujan Road, Uzan Bazar, Guwahati, Ph. 0361-516792;

Editor, Yojana (Bengali), 8, Esplanade East, Ground Floor, Calcutta, Ph. 033-2482576;

Editor, Yojana (Tamil), 'A' Wing, Ground Floor, Shastri Bhavan, Chennai, Ph. 044-8272382;

Editor, Yojana (Telugu), 10-2-1, F.D.C. Complex, AC Guards, Hyderabad, Ph. 040-236579;

Editor, Yojana (Malayalam), 'Reshmi', 14/916, Vazhuthacadu, Thiruvananthapuram, Ph. 0471-63826;

Editor, Yojana (Kannada), 1st Floor, 'F' Wing, Kendriya Sadan, Koramangala, Bangalore, Ph. 080-5537244.



साहित्य और संस्कृति का मासिक

आजकल

परंपरा और समकालीनता का संगम

हर महीने पढ़िए :

- साहित्य के मर्म की पहचान कराने वाले सारगर्भित लेख
- विद्वान लेखकों की विश्लेषणात्मक टिप्पणियां
- जीवन की गहराइयों को उद्घाटित करती कहानियां
- जिंदगी की मीठी-कड़वी अनुभूतियों को छूती कविताएं

अपने समाचारपत्र विक्रेता से लें या फिर नियमित ग्राहक बनें

चंदे की दरें : ☐ एक वर्ष : 70 रु. ☐ दो वर्ष : 135 रु. ☐ तीन वर्ष : 190 रु.

मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग के नाम बनवाएं और निम्न पते पर भेजें :

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक,

प्रकाशन विभाग

पत्रिका एकांश, पूर्वी ब्लॉक-4, लेवल-7,

रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066, दूरभाष : 6105590

इन स्थानों पर भी उपलब्ध हैं

विक्रय केन्द्र : प्रकाशन विभाग ☐ पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001 ☐ सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001 ☐ हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 ☐ कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038 ☐ 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069 ☐ राजाजी भवन, वेस्ट नगर, चेन्नई-600009 ☐ बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004 ☐ प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001 ☐ 27/6, राममोहन राय मार्ग, लखनऊ-226019 ☐ राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500001 ☐ प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560034.

विक्रय केंद्र : पत्र सूचना कार्यालय ☐ सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.) ☐ 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003 ☐ बी-7, भवानी सिंह मार्ग, जयपुर (राजस्थान)